अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका
नवम्बर २०१७

प्रभु का आवास

अग्निशिखा नवम्बर २०१७ वर्ष ४८, अंक ४, पूर्णांक ५६७

विषय-सूची

(प्रभु का आवास)

सम्पादकीय	३
एक दिव्य स्वप्न	५
नींव	११
आश्रम का वातावरण	२०
पूर्णयोग की साधना की शर्तें	२७
बृहद् आन्तरिक आश्रम	४६

स्थानाभाव के कारण इस अंक में 'पुरोधा' का समावेश करना सम्भव नहीं हो सका।

एक प्रार्थना

जो होना चाहिये वह होगा, जो करना ज़रूरी है वह किया जायेगा...।

हे प्रभो, तूने मेरी सत्ता में कैसा निश्चल आश्वासन रख दिया है। कौन-से जीव या क्या चीज़ें तुझे अभिव्यक्त करेंगी? अभी कौन कह सकता है?... उन सभी चीज़ों में जो नयी, सदा उच्चतर और पूर्णतर अभिव्यक्ति के लिए प्रयास करती हैं, तू उपस्थित है। लेकिन प्रकाश का केन्द्र अभी तक प्रकट नहीं हुआ है क्योंकि अभिव्यक्ति का केन्द्र अभी तक अनुकूलित नहीं हुआ है।

हे दिव्य स्वामी, जो होना है वह होगा और शायद वह उससे बहुत भिन्न होगा जिसकी सब आशा करते हैं...।

लेकिन कुछ विशेष नीरव रहस्यों को प्रकट करना कैसे सम्भव हो सकता है?

शक्ति उपस्थित है; उसी में आत्मा है।

कब और कैसे यह शक्ति उछल पड़ेगी? जब तू यन्त्र को तैयार पायेगा।

कैसा मधुर है तेरा अचञ्चल आश्वासन, तेरी शान्ति की शक्ति!...

२२ जून १९१४ —श्रीमाँ

मैं आशा करती हूँ कि यह महीना तुम सबके लिए वह उपलब्धि लायेगा जिसके लिए तुम कामना करते हो—सुखद स्थिरता, अपरिवर्तनशील शान्ति, प्रकाशमयी नीरवता।
यही मेरी कामना है और यही मेरा आशीर्वाद। —श्रीमाँ

सम्पादकीय—आज से ९१ वर्ष पहले इसी महीने में श्रीअरविन्द आश्रम की नींव पड़ी थी। २४ नवम्बर १९२६ की महान् घटना (अधिमानसिक अवतरण) के बाद सचमुच आश्रम का निर्माण होना और देश-देशान्तर में श्रीमाँ-श्रीअरविन्द के योग का प्रसार भी आरम्भ हो गया। योगाभ्यास कहीं भी किया जा सकता है, लेकिन निस्सन्देह आश्रम हमेशा से वह केन्द्रीय स्थल रहा है जहाँ श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की तपस्या द्वारा उतारी गयी 'नवीन चेतना' की शक्ति का प्रभाव इसके रोम-रोम में बसा हुआ है। विशेष रूप से इस स्थान को श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ ने अपने योग की उपलब्धि के लिए न केवल अपना पार्थिव आवास चुना है बल्कि अपनी तपस्या की पीठ के लिए भी इसी स्थान को चुना और इस पथ के अनुयायियों के लिए—भले और कोई कारण न हो—एकमात्र इसी कारण से श्रीअरविन्द आश्रम हमेशा-हमेशा अपनत्व से भरा तीर्थस्थल रहेगा। हालाँकि हमारा योग भौगोलिक सीमाओं से बँधा हुआ नहीं है और इस सर्वांगीण योग के अनुगामी दुनिया-भर में फैले हुए हैं, फिर भी स्वयं आश्रम का अस्तित्व ही पृथ्वी को यह भारी सहायता प्रदान करता है कि पृथ्वी के मूल में भगवान् के प्रति ऊपर उठती हुई जो तीव्र अभीप्सा है उसे वह निरन्तर पोषित करता रहे।

अतः, नवम्बर के अंक में हम आश्रम के कुछ पहलुओं पर, उसके मौलिक पथ-प्रदर्शक सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। स्थानाभाव के कारण हम आश्रम-जीवन के बहुमुखी आयामों का समावेश नहीं कर पाये, बस कुछेक पक्षों पर ही चञ्चुपात किया गया है।

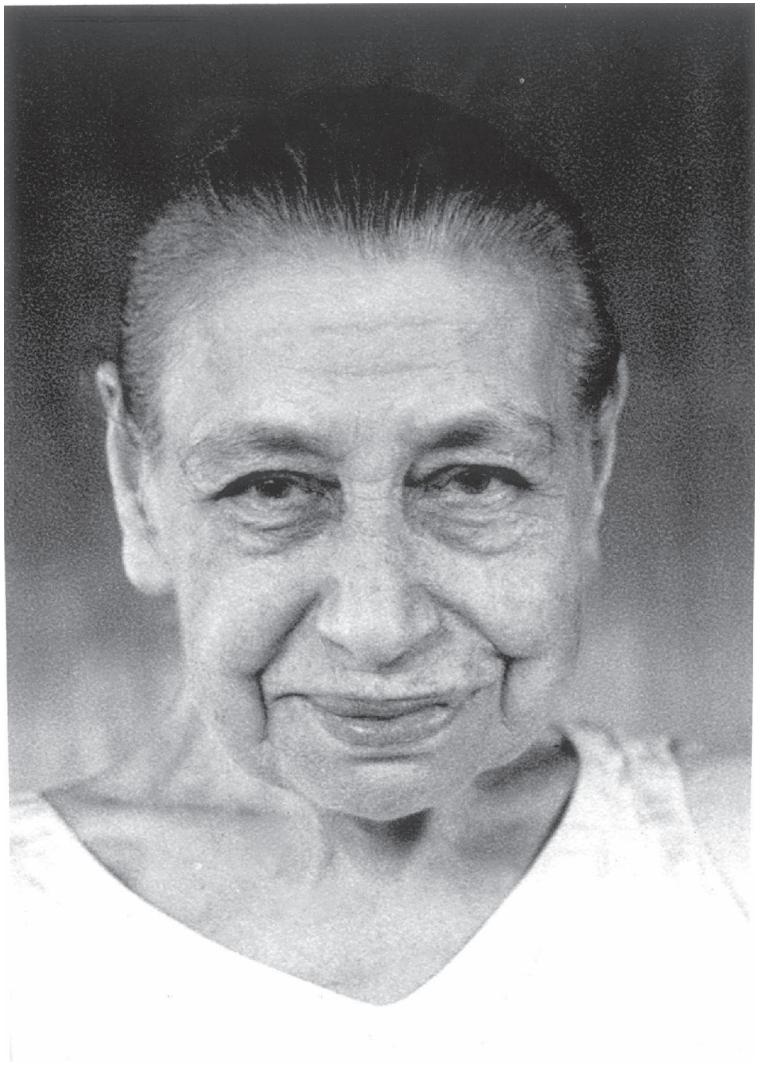

नहीं, आश्रम में रहना पर्याप्त नहीं है—व्यक्ति को श्रीमाँ के प्रति उद्घाटित होना होगा और उस कीचड़ को अपने ऊपर से साफ़ करना होगा जिसमें वह जगत् के अन्दर रहते हुए खेल रहा था।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १५६ —*श्रीअरविन्द*

एक दिव्य स्वप्न

संसार में कहीं एक ऐसा स्थान होना चाहिये जिसे कोई देश या राष्ट्र अपनी सम्पत्ति न कह सके, ऐसा स्थान जहाँ सद्भावना और सच्ची अभीप्सा-वाले सब लोग पूरी स्वतन्त्रता से विश्व-नागरिक बन कर एकमात्र सत्ता की, परम सत्य की आज्ञा का पालन करते हुए रह सकें; वह शान्ति, एकता और सामञ्जस्य का स्थान होगा जहाँ मनुष्य की सारी युद्ध-वृत्तियों का उपयोग केवल दुःख और दर्द के कारणों को जीतने में, अपनी कमज़ोरियों और अज्ञान पर प्रभुत्व प्राप्त करने में, तथा अपनी सीमाओं और अशक्यताओं पर विजय प्राप्त करने में होगा; ऐसा स्थान जहाँ मामूली इच्छाओं और आवेगों की तृप्ति तथा भौतिक सुख और आमोद-प्रमोद की अपेक्षा आत्मा की आवश्यकताओं और प्रगति को अधिक महत्त्व दिया जायेगा। इस स्थान पर, बच्चे अपनी आत्मा के साथ सम्बन्ध खोये बिना समग्र रूप से बढ़ और विकसित हो सकेंगे; शिक्षा भी यहाँ परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने, प्रमाणपत्र प्राप्त करने अथवा ऊँचे पद पाने के लिए नहीं दी जायेगी, वह विभिन्न क्षमताओं को बढ़ाने और नयी क्षमताओं को प्रकट करने में सहायता देगी। इस स्थान पर सेवा करने और संगठित करने के अवसर उपाधियों और पदों का स्थान ले लेंगे। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं को समान रूप से पूरा किया जायेगा। पूरे संगठन में बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता जीवन के सुखों व शक्तियों की वृद्धि में नहीं, बल्कि कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों की वृद्धि में अभिव्यक्ति पायेगी। सभी लोगों को सभी प्रकार का कलात्मक सौन्दर्य, चित्रकला, शिल्प, संगीत, साहित्य आदि समान रूप से प्राप्य होगा। इस कलात्मक सौन्दर्य का आनन्द प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियों के बल पर नहीं, बल्कि अपनी आन्तरिक क्षमताओं के अनुपात में ही प्राप्त कर सकेगा। क्योंकि इस आदर्श स्थान में धन सर्वाधिपति नहीं होगा; भौतिक सम्पत्ति तथा सामाजिक पद की अपेक्षा व्यक्तित्व का अधिक मूल्य होगा। यहाँ पर काम आजीविका के लिए नहीं, बल्कि अपने-आपको अभिव्यक्त करने और अपनी क्षमताओं तथा सम्भावनाओं को विकसित करने के लिए होगा, साथ ही यह काम पूरे समुदाय की सेवा के लिए भी होगा। दूसरी ओर, समुदाय हर एक के

निर्वाह तथा कार्यक्षेत्र का प्रबन्ध करेगा। संक्षेप में, यह एक ऐसा स्थान होगा जहाँ मानव सम्बन्ध, जो प्रायः ऐकान्तिक रूप से प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित होते हैं, अधिक अच्छा करने की स्पर्धा तथा सहयोग में और सच्चे भ्रातृभाव में बदल जायेंगे।

निश्चित रूप से पृथ्वी अभी ऐसे आदर्श को चरितार्थ करने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि अभी तक मानव के पास इसे समझने और स्वीकार करने के लिए आवश्यक ज्ञान नहीं है, न इसे कार्यान्वित करने के लिए अनिवार्य सचेतन शक्ति ही है; इसीलिए मैं इसे स्वप्न कहती हूँ।

फिर भी यह स्वप्न वास्तविकता बनने की तैयारी में है। हम श्रीअरविन्दाश्रम में अपने सीमित साधनों के अनुसार एक बहुत छोटे पैमाने पर यही करने का प्रयास कर रहे हैं। उपलब्धि अभी पूर्णता से अवश्य ही काफ़ी दूर है, फिर भी प्रगति हो रही है; धीरे-धीरे हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। हम आशा करते हैं कि एक दिन वर्तमान दुर्व्यवस्था में से निकल कर, अधिक सत्य और अधिक समस्वर नये जीवन में प्रवेश करने के लिए हम इसे संसार के सामने एक क्रियात्मक और प्रभावशाली साधन के रूप में रखने-योग्य बन सकेंगे।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १२, पृ. ८४-८५

आश्रम की कार्य-प्रणाली

... आश्रम के गठन में कभी भी किसी मानसिक योजना, किसी निर्धारित कार्यक्रम या किसी पूर्वनिश्चित संगठन की कल्पना नहीं की गयी। सारी चीज़ ने 'चेतना' (चित्-तपस्) की गति द्वारा जन्म लिया, उसी के द्वारा वह विकसित हुई और जीवन्त सत्ता के रूप में खिलती गयी, यही 'चेतना' उसे निरन्तर सहारा दे रही, प्रस्फुटित कर रही और प्रबल बना रही है। जैसे-जैसे 'चित्-शक्ति' जड़-भौतिक में उतर कर उसमें फैलती जाती है, वह धरती पर उपयुक्त पात्रों की खोज में रहती है ताकि उनमें अवतरित होकर स्वयं को अभिव्यक्त कर सके। यह तो मानी हुई बात है कि पात्र जितना उद्घाटित, ग्रहणशील और नमनीय होता है, उतना ही अच्छा परिणाम आता है। कार्य के निर्विघ्न तथा सुसामञ्जस्यपूर्ण कार्यान्वयन में साधक के द्वारा तथा उसके अन्दर से जो दो बाधाएँ उठती हैं वे हैं:

१. उसके पूर्वनिर्धारित विचार तथा मानसिक रचनाएँ जो सचेतन शक्ति के प्रभाव तथा कार्य के रास्ते में अड़चन डालती हैं।

२. प्राण की अभिरुचियाँ तथा आवेग जो शक्ति की अभिव्यक्ति को विकृत कर देते, उसे झूठा ठहरा देते हैं।

ये दोनों ही चीज़ें अहंकार की स्वाभाविक उपज हैं। अगर इन दोनों तत्त्वों का हस्तक्षेप न हो तो भौतिक रूप से मुझे बीच में पड़ने की कोई आश्यकता ही नहीं।

तुम्हारा यह कहना बिलकुल सही है कि तुम "श्रीमाँ यह पसन्द करती हैं", "श्रीमाँ यह नापसन्द करती हैं" जैसे वाक्यांशों पर विश्वास नहीं करते। बड़ी बचकानी बातें होती हैं ये!

यह बिलकुल स्पष्ट है कि 'शक्ति' तथा 'चेतना' कार्यरत हैं, और जब कभी इस 'शक्ति' को विकृत कर दिया जाता है या अपनी क्रिया में 'चेतना' धुँधली हो जाती है, तब मुझे बीच में पड़ कर क्रिया को सुधारना होता है। अधिकतम मामलों में चीज़ों में बड़ा घालमेल होता है और वहाँ भी मुझे पवित्र तथा विकृत क्रियाओं को अलग-अलग करना होता है।

इसके अलावा यहाँ सभी को बहुत स्वतन्त्रता दी गयी है, क्योंकि 'सचेतन शक्ति' असंख्य तरीक़ों से स्वयं को अभिव्यक्त कर सकती है, और सच्ची अभिव्यक्ति के पूर्ण तथा सर्वांगीण रूप से प्रकट होने के लिए यहाँ किसी का भी बहिष्कार नहीं किया जाता, बल्कि हर एक को पूरा-पूरा अवसर दिया जाता है।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ६७६-७७

नये जगत् का पालना

मानवजाति की वर्तमान उपलब्धियों में से कोई भी, चाहे वह कितनी भी महान् क्यों न हो, हमारे लिए अनुकरण करने-योग्य आदर्श नहीं बन सकती। मानव आदर्शों के परीक्षण-क्षेत्र के रूप में विशाल जगत् पड़ा है।

हमारा उद्देश्य बिलकुल भिन्न है और अगर अभी हमारी सफलता के अवसर बहुत कम हों फिर भी हमें विश्वास है कि हम भविष्य को तैयार करने के लिए काम कर रहे हैं।

मैं जानती हूँ कि बाह्य दृष्टिकोण से हम जगत् की बहुत-सी वर्तमान

उपलब्धियों से नीचे हैं, परन्तु हमारा उद्देश्य मानव-मानदण्ड के अनुसार पूर्णता नहीं है। हम किसी और चीज़ के लिए प्रयास कर रहे हैं जो भविष्य की है।

आश्रम की स्थापना इसीलिए की गयी है और उसका उद्देश्य भी यही है कि वह नये जगत् का पालना बने।

ऊपर की प्रेरणा, ऊपर की पथ-प्रदर्शिका शक्ति और ऊपर की सर्जक-शक्ति नयी उपलब्धि के अवतरण के लिए कार्यरत हैं।

केवल अपनी त्रुटियों, अपनी अपूर्णताओं और अपनी असफलताओं के नाते आश्रम वर्तमान जगत् का है।

मानवजाति की वर्तमान उपलब्धियों में से किसी में भी वह शक्ति नहीं है जो आश्रम को उसकी कठिनाइयों से बाहर निकाल सके।

आश्रम के सभी सदस्यों का पूर्ण परिवर्तन और अवतरित होते हुए 'सत्य' के 'प्रकाश' की ओर सर्वांगीण उद्घाटन ही उसे अपने-आपको चरितार्थ करने में सहायता दे सकते हैं।

निस्सन्देह, यह बहुत कठिन कार्य है, लेकिन हमें इसे पूरा करने की आज्ञा मिली है और हम धरती पर केवल इसी उद्देश्य से हैं।

हम परम प्रभु की 'इच्छा' और 'सहायता' में अडिग विश्वास के साथ अन्त तक चलते चलेंगे।

द्वार खुला हुआ है और उन सबके लिए हमेशा खुला रहेगा जो इस उद्देश्य के लिए अपना जीवन देने का निश्चय करें।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १३, पृ. ११५-१६

एक घोषणा

कुछ लोग चीज़ों को उथली दृष्टि से देखते हुए पूछ सकते हैं कि यह कैसी बात है कि आश्रम इस नगर के बीच इतने वर्षों से है, फिर भी यहाँ के नगरवासी इसे पसन्द नहीं करते।

इसका पहला और तत्काल दिया जाने वाला उत्तर यह है कि इस नगर में जो लोग संस्कृति, बुद्धि, सद्भावना और शिक्षा में ऊँचे स्तर के हैं उन्होंने न केवल आश्रम का स्वागत किया है बल्कि आश्रम के लिए सहानुभूति, सराहना और सद्भावना भी प्रकट की है। पॉण्डिचेरी में श्रीअरविन्द आश्रम

के बहुत-से सच्चे और निष्ठावान् अनुयायी और मित्र हैं।

यह कहने के बाद, हमारी स्थिति स्पष्ट है।

हम किसी मत, किसी धर्म के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम कैसी भी सरकार के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम किसी सामाजिक वर्ग के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम किसी राष्ट्र या सभ्यता के विरुद्ध नहीं लड़ते।

हम विभाजन, निश्चेतना, अज्ञान, तमस् और मिथ्यात्व के विरुद्ध लड़ रहे हैं।

हम धरती पर एकता, ज्ञान, चेतना, 'सत्य' को प्रतिष्ठित करने की कोशिश कर रहे हैं और जो भी 'प्रकाश', 'शान्ति', 'सत्य' और 'प्रेम' की इस नयी सृष्टि के आगमन का विरोध करता है हम उसके विरुद्ध लड़ते हैं।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १३, पृ. १३२

यहाँ कोई चीज़ ऐसी है जो बाहरी दिखावों से बहुत ज़्यादा अच्छी है, हृदय और आत्मा में ऊष्माभरे प्राणदायी सूर्य जैसी है।

ठीक पहचाना तुमने, और मैं तुम्हें बधाई देती हूँ। जो केवल बाहरी दिखावों को देखते हैं वे उनमें उन सूक्ष्म परन्तु महत्त्वपूर्ण भेदों को नहीं पहचान पाते जो सच्ची और प्रकाशमयी चेतना की उपस्थिति से आते हैं।

*

यहाँ पर हमारा कोई धर्म नहीं है। हम धर्म के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन को रखते हैं जो एक ही साथ अधिक सच्चा, अधिक गहरा और अधिक ऊँचा है, यानी, भगवान् के अधिक निकट है। क्योंकि भगवान् हर चीज़ में हैं, परन्तु हम उनके बारे में सचेतन नहीं हैं। यही वह विशाल प्रगति है जो मनुष्य को करनी चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १३, पृ. ११६

"मुझे भय है कि आश्रम के बारे में तुम एक मूलभूत भ्रान्ति को पाल रहे हो। यह कोई ऐसी संस्था नहीं है जिसे श्रीअरविन्द ने व्यवस्था, क़ानून तथा विधि-विधान के तहत सुनियोजित रूप से विधिवत् रचा है। श्रीअरविन्द जिस 'सत्य' को अभिव्यक्त करते हैं उसी की शक्ति के द्वारा यह स्वतः ही विकसित हुआ है और यह केवल उसी परम सत्य की गतियों का अनुसरण करेगा। श्रीअरविन्द तथा आश्रम एक सर्वांगीण पूर्णता का निर्माण करते हैं। उनकी सत्ता आश्रम पर फैली हुई है, वह आश्रम के सम्पूर्ण जीवन को अपने अन्दर समेट कर एक सामञ्जस्यपूर्ण आध्यात्मिक एकता रचती है। वह सत्ता ही आश्रम की आत्मा है, आश्रम का विकास उस आत्मा का विकास है। आश्रम को मात्र साधकों के एक दल या समूह के रूप में देखना या यह मानना कि श्रीअरविन्द के बिना इसका कोई जीवन, इसकी कोई अभीप्सा या लक्ष्य है, या हो सकता है—एकदम से ग़लत होगा। आश्रम का जीवन, इसकी गतियाँ तथा इसकी क्रियाएँ पूरी तरह से इसके आन्तरिक विकास तथा उन्नति की अभिव्यक्ति हैं। यहाँ कोई नियम, क़ानून, विधि-विधान नहीं हैं—अगर है तो बस एक ही विधान है—श्रीअरविन्द के प्रकाश में तथा उनके द्वारा आध्यात्मिक विकास तथा प्रगति करना।"

श्रीअरविन्द द्वारा निर्देशित एक साधक द्वारा लिखा पत्र। श्रीअरविन्द ने इसे संशोधित किया था। अमल किरण द्वारा उद्धृत।

Our Light and Delight, पृ. ८-९

नींव

जीवन का एक लघु आकार

साधक को क्या होना चाहिये इसके बारे में मैं तुम्हारे भावों की क़दर करती हूँ और उस दृष्टिकोण से, तुम जो कहते हो वह बिलकुल सच है। लेकिन यह भली-भाँति जानी हुई बात है कि आश्रम में केवल साधक ही नहीं हैं। आश्रम जीवन का एक लघु आकार है जिसमें योगाभ्यास करने वाले संख्या में कम हैं, और अगर मैं यहाँ सिर्फ़ उन्हीं को रखूँ जो अपनी साधना में बिलकुल सच्चे और निष्कपट हैं, तो वस्तुतः, बहुत कम ही रह जायेंगे।

श्रीअरविन्द हमेशा हमें इस तथ्य की याद दिलाते हैं कि भगवान् हर जगह हैं और हर चीज़ में हैं, और हम सभी से सच्ची करुणा का अभ्यास करने को कहते हैं। यह बात बड़े ही सुन्दर ढंग से उस सूत्र में कही गयी है जिस पर मैं अभी-अभी टिप्पणी कर रही थी: "अपने-आपको निर्दय होकर जाँचो, तब तुम औरों के प्रति अधिक उदार और दयालु होओगे।"

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १३, पृ. १५५

आश्रम एक प्रयोगशाला

यह आवश्यक या फिर यूँ कहें कि अनिवार्य सत्य है—जैसा कि आधार दास का कहना है—कि आश्रम, जो आध्यात्मिक तथा अतिमानसिक योग की एक "प्रयोगशाला" है, उसमें मानवता के विभिन्न नमूनों का समावेश होना चाहिये। क्योंकि रूपान्तर की समस्या को सभी वाञ्छित तथा अवाञ्छित तत्त्वों का सामना करना ही होता है। एक ही मनुष्य अपने अन्दर सचमुच दोनों चीज़ों के मिश्रण को लिये रहता है। योग के लिए अगर केवल सात्त्विक तथा सुसंस्कृत लोग ही आयें, ऐसे, जिनके अन्दर बहुत ज़्यादा प्राणिक कठिनाइयाँ नहीं हों, तब, चूँकि पार्थिव प्रकृति में प्राणिक तत्त्व की कठिनाइयों का सामना करके उन पर विजय नहीं पायी गयी, इसलिए बहुत सम्भव है कि यह प्रयास ही असफल हो जाये। हो सकता है कि कुछ अवस्थाओं में मन, प्राण तथा भौतिक पर अधिमानस की एक तह आ जाये और उन्हें प्रभावित करने लगे, लेकिन इससे मानवजाति में कोई अतिमानसिक या चरम परिवर्तन नहीं आयेगा। आश्रम में सभी तरह के,

सभी जगहों से लोग आते हैं; इससे भिन्न हो नहीं सकता।

सामूहिक योग के मार्ग में—यद्यपि अनिवार्यतः व्यक्तिगत रूप में नहीं —चूँकि हर एक स्तर को लिया जाता है, उस स्तर की सभी कठिनाइयाँ भी सिर उठा लेती हैं... "प्रयोगशाला" में प्रारम्भिक कार्य के पूरा हो जाने पर चीज़ें निश्चित रूप से बदल जायेंगी।

साथ ही यहाँ आश्रमवासियों के बीच सामान्य तरीक़े के मानव-भाईचारे पर ज़ोर नहीं दिया जाता (हाँ, सद्‌भाव, सम्मान तथा शिष्टता हमेशा बने रहने चाहियें), क्योंकि यह हमारा लक्ष्य नहीं है; हमारा लक्ष्य है, एक नूतन चेतना में प्रवेश कर एकता स्थापित करना और इसके लिए प्रत्येक को जो सबसे पहली चीज़ करनी है वह है, कि वह अपनी साधना करे, उस नूतन चेतना तक पहुँच कर वहाँ एकात्मता को उपलब्ध करे।

साधक में जो भी दोष हों, वे सभी ऊपर की उस 'ज्योति' के द्वारा दूर कर दिये जायेंगे—अगर सत्ता पहले से ही किसी सात्त्विक नियम की ओर झुकी हुई हो, केवल तभी कोई सात्त्विक नियम उसको परिवर्तित कर सकता है।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ६००-०१

योग करने का निश्चय करना

श्रीअरविन्द का योग करने का अर्थ है, अपने-आपको पूर्णतया रूपान्तरित करने की चाह करना, उसका अर्थ है, जीवन में बस, एक ही लक्ष्य का होना, ऐसा कि फिर और किसी चीज़ का अस्तित्व ही न हो, केवल उसी का अस्तित्व हो। तब तुम स्पष्ट रूप से अपने अन्दर यह अनुभव कर सकते हो कि तुम योग करना चाहते हो या नहीं; लेकिन अगर तुम नहीं चाहते, फिर भी तुम सद्‌भावना का जीवन, सेवा का जीवन, सहानुभूति का जीवन जी सकते हो; तुम 'कार्य' को ज़्यादा आसानी से सिद्ध करने के लिए मेहनत कर सकते हो—यह सब—और भी बहुत-सी चीज़ें कर सकते हो। लेकिन इसमें और योग करने में बहुत अन्तर है।

और योग करने के लिए, तुम्हें उसे सचेतन रूप से चाहना चाहिये, सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि वह क्या है। तुम्हें जानना चाहिये कि वह क्या है, उसके लिए दृढ़ निश्चय करना चाहिये; लेकिन एक बार

दृढ़ निश्चय कर लो, तो फिर तुम्हें पीछे न हटना चाहिये। इसीलिए तुम्हें पूर्ण ज्ञान के साथ उसे अपनाना चाहिये। तुम जब कहो: "मैं योग करना चाहता हूँ" तो तुम्हें पता होना चाहिये कि तुम किस चीज़ के लिए संकल्प कर रहे हो; और इसी कारण मुझे ख़याल नहीं कि मैंने कभी इस दृष्टि से तुम्हारे ऊपर ज़ोर डाला हो। मैं इसके बारे में तुमसे कह सकती हूँ। ओह! मैं इसके बारे में बहुत कुछ कहती हूँ, तुम यहाँ इसीलिए हो कि मैं तुमसे इस बारे में कहूँ; लेकिन व्यक्तिगत रूप से मैं उन्हीं से कहती हूँ जो यह कहते हुए आते हैं: "जी, जो हो, योग के बारे में मेरे अपने विचार हैं और मैं उसे करना चाहता हूँ;" यह अच्छा है।

और तब उनके लिए यह कुछ भिन्न चीज़ होती है, और जीवन की अवस्थाएँ भिन्न होती हैं, विशेष रूप से आन्तरिक। विशेष रूप से अन्दर चीज़ें बदलती हैं।

वहाँ हमेशा स्थिति का सुधार करने के लिए एक चेतना निरन्तर काम करती रहती है, जो तुम्हें सारे समय ऐसी बाधाओं के सामने रखती है जो तुम्हें आगे बढ़ने से रोकती हैं, और जो तुम्हारी अपनी ही भूलों और अन्धेपन से तुम्हारी टक्कर करवाती हैं। और यह चीज़ केवल उन्हीं लोगों के लिए काम करती है जिन्होंने योग करने का निश्चय किया है। औरों के लिए 'चेतना' प्रकाश का, ज्ञान का, संरक्षण का, प्रगति की शक्ति का काम करती है ताकि वे अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता तक पहुँच सकें और जहाँ तक हो सके, यथासम्भव अनुकूल वातावरण में विकसित हो सकें —लेकिन वह उन्हें अपने चुनाव के लिए बिलकुल स्वतन्त्र छोड़ देती है।

निश्चय अन्दर से आना चाहिये। जो सचेतन रूप से योग के लिए आते हैं, यह जानते हुए कि योग क्या है, हाँ, उनके यहाँ रहने की अवस्थाओं में... बाहरी तौर पर कोई अन्तर नहीं होता, लेकिन आन्तरिक रूप में बहुत बड़ा अन्तर होता है। उनकी चेतना में एक प्रकार की दृढ़ता होती है, जो उन्हें पथभ्रष्ट नहीं होने देती: व्यक्ति जो भूलें करते हैं वे तुरन्त इतने पर्याप्त परिणामों के साथ दिखायी देती हैं कि वे उनके बारे में कोई ग़लती नहीं कर सकते, और चीज़ें बहुत गम्भीर हो जाती हैं। लेकिन ऐसा बहुधा नहीं होता।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड ७, पृ. २२१-२२

आश्रम की रचना का लक्ष्य सामान्य आश्रम-संस्थाओं का लक्ष्य नहीं है, अर्थात्, यहाँ का ध्येय संसार का त्याग नहीं, बल्कि संसार में रह कर इसे एक नये प्रकार के क्रम-विकास का केन्द्र तथा क्षेत्र बनाना है ताकि वहाँ से जीवन एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना में पदार्पण कर ले और एक महानतर जीवन यहाँ, धरा पर मूर्त रूप ले ले। ऐसा कोई व्यापक नियम नहीं है कि अमुक स्तर पर पहुँचने के बाद ही व्यक्ति सामान्य जीवन छोड़ कर आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर सकता है; प्रत्येक मामले में यह निर्भर करता है व्यक्तिगत आवश्यकता और प्रेरणा पर, इस सम्भावना तथा औचित्य पर कि व्यक्ति कब यह पग उठाना चाहता है और श्रीमाँ के निकट रहने का निश्चय करता है।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५९२-९३

यहाँ रहना आसान नहीं है

बाहरी रंग-रूप से निर्णय न करो और लोग जो कहते हैं उस पर विश्वास न करो, क्योंकि ये दोनों चीज़ें भटकाने वाली हैं। लेकिन अगर तुम्हें जाना ज़रूरी मालूम होता है, तो निस्सन्देह तुम जा सकते हो और बाहरी दृष्टिकोण से शायद यह अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण भी होगा।

और फिर, यहाँ रहना आसान नहीं है। आश्रम में कोई बाहरी अनुशासन या दिखायी देने वाली परीक्षा नहीं है। लेकिन आन्तरिक परीक्षा निरन्तर और कठोर होती है। यहाँ रहने-लायक होने के लिए तुम्हें अपनी अभीप्सा में बहुत सच्चा होना चाहिये ताकि तुम समस्त अहंकार को पार कर सको और मिथ्याभिमान को जीत सको।

पूर्ण समर्पण की बाहर से माँग नहीं की जाती, लेकिन जो लोग यहाँ बने रहना चाहते हैं उनके लिए यह अनिवार्य है और बहुत-सी चीज़ें समर्पण की सच्चाई की परीक्षा करने के लिए आती हैं। फिर भी, जो उनके लिए अभीप्सा करते हैं उनके लिए 'कृपा' और सहायता हमेशा मौजूद रहती हैं और उन्हें श्रद्धा-विश्वास के साथ ग्रहण किया जाये तो उनकी शक्ति असीम होती है।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १३, पृ. ११७

आश्रम में भौतिक जीवन के आधार

यहाँ के भौतिक जीवन के लिए बस दो ही आधार सम्भव हैं। एक यह कि व्यक्ति आश्रम का सदस्य है जो आश्रम आत्मदान और समर्पण के सिद्धान्त पर स्थापित है। व्यक्ति भगवान् का है और जो कुछ उसके पास है वह सब भगवान् का है, यहाँ हम जो कुछ देते हैं वह अपना नहीं है बल्कि पहले से ही भगवान् का है। यहाँ मूल्य या बदले का कोई प्रश्न नहीं, कोई मोल-तोल नहीं, किसी माँग और कामना के लिए स्थान नहीं। श्रीमाँ ही एकमात्र अधिकारिणी हैं और वे प्राप्त साधनों तथा अपने यन्त्रों की क्षमताओं के अनुसार जितने उत्तम रूप में करना सम्भव है उतने उत्तम रूप में सारी चीज़ों की व्यवस्था करती हैं। वे साधकों के मानसिक मानदण्डों या प्राणिक कामनाओं और माँगों के अनुसार काम करने के लिए बँधी हुई बिलकुल नहीं हैं; उनके साथ व्यवहार करते समय वे प्रजातन्त्रात्मक समानता का उपयोग करने के लिए बाध्य नहीं। वे प्रत्येक व्यक्ति के विषय में यह देखती हैं कि उसकी सच्ची आवश्यकता क्या है और उसकी आध्यात्मिक प्रगति के लिए सबसे उत्तम क्या है और उसके अनुसार उसके साथ व्यवहार करने के लिए वे स्वतन्त्र हैं। कोई भी व्यक्ति उनके कार्यों पर विचार नहीं कर सकता अथवा उन पर अपना निजी नियम और मानदण्ड नहीं लाद सकता; केवल वे ही नियम बना सकती हैं और अगर उचित समझें तो फिर उन नियमों का उल्लंघन भी कर सकती हैं, पर कोई भी यह माँग नहीं पेश कर सकता कि उन्हें ऐसा ही करना होगा। व्यक्तिगत माँगों और कामनाओं को उन पर नहीं लादा जा सकता। अगर किसी व्यक्ति को अपनी सच्ची आवश्यकता की बात कहनी हो अथवा उसे कोई ऐसी सूचना देनी हो जो उसके अपने क्षेत्र के अन्दर हो तो वह कह सकता है; परन्तु यदि माँ स्वीकृति न दें तो उसे सन्तुष्ट रहना चाहिये और उस बात को वहीं छोड़ देना चाहिये। यही वह आध्यात्मिक अनुशासन है जिसका केन्द्र वह व्यक्ति होता है जो भागवत सत्य का प्रतिनिधित्व करता है या उसका मूर्त रूप होता है। या तो श्रीमाँ वही व्यक्ति हैं और इस प्रसंग की ये सब बातें स्पष्ट रूप से साधारण समझ की बातें हैं; अथवा श्रीमाँ वह नहीं हैं, और उस हालत में किसी को यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी रास्ते पर जा सकता है, और फिर न तो आश्रम ही रह जाता है और न योग ही।

दूसरी ओर, यदि कोई आश्रम का सदस्य बनने या अनुशासन का पालन कर सकने के लिए तैयार नहीं और फिर भी उसे इस योग में कोई स्थान दिया जाता है तो वह आश्रम से अलग रहता है और अपना खर्च आप चलाता है। भौतिक स्तर पर उसके लिए, कार्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक नियमों को छोड़ कर और कोई अनुशासन नहीं होता। श्रीमाँ पर उस व्यक्ति का कोई भौतिक उत्तरदायित्व नहीं होता।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ३७४-७५

धरती के प्रतीकात्मक प्रतिनिधि

अतिमानसिक जगत् को यहाँ उतारने के लिए धरती को अपने सभी रूपों को साथ लेकर चलना होगा; वस्तुतः उन्हें भी जो इसके लिए एकदम तैयार नहीं हैं। धरती पर जितने भी विभिन्न तत्त्व हैं वे सभी उस पार्थिव कड़ी के प्रतीकात्मक प्रतिनिधि होने चाहियें जिसके साथ हम अतिमानसिक जगत् की कड़ी को जोड़ना चाहते हैं। धरती विश्व का प्रतीकात्मक प्रतिरूप है, और समूह धरती का प्रतीकात्मक प्रतिरूप होता है।

श्रीअरविन्द और मैंने १९१४ में (काफ़ी समय पहले) इस विषय पर विचार-विमर्श किया था और हमने दो सम्भावनाएँ देखीं: हम जो कार्य अभी कर रहे हैं उसे जारी रखें, या फिर एकान्तवास में चले जायें और तब तक एकाकी जीवन व्यतीत करें जब तक कि अतिमानस को न प्राप्त कर लें, लेकिन साथ ही धरती पर रूपान्तरण का कार्य भी प्रारम्भ कर दें। और श्रीअरविन्द ने अधिकारपूर्वक कहा कि हम एकान्तवास में जाकर, स्वयं को पृथक् बिलकुल नहीं कर सकते, क्योंकि जैसे-जैसे हम धरती पर प्रगति का वितान तानेंगे, वैसे-वैसे अधिकाधिक विश्वभावापन्न बनते जायेंगे और परिणामतः धरती का रूपान्तर क्रमशः होता रहेगा...

और स्वयं जीवन ने इसका उत्तर दे दिया, व्यक्तियों का एक समूह सामने आ गया। निस्सन्देह, स्पष्ट रूप में हमने देखा कि इससे हमारा कार्य अधिक जटिल और कठिन हो जायेगा (क्योंकि इससे मेरे ऊपर बहुत भारी उत्तरदायित्व, विशाल भौतिक कर्म आन पड़ा), लेकिन विहंगम दृष्टि से देखने पर—'कार्य' के लिए—यह अनिवार्य, यहाँ तक कि अवश्यम्भावी था। और बहरहाल, जल्दी ही हमने यह भी देख लिया कि यहाँ आश्रम के इस

समूह में प्रत्येक व्यक्ति एक सम्भावना और साथ ही एक विशेष कठिनाई का भी प्रतीक है जिसे सुलझाना है।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से *२० सितम्बर १९६०*

सामूहिक कार्य और सामूहिक साधना

कोई भी व्यक्तिगत एकाकी रूपान्तर, यानी, बस व्यक्ति रूपान्तरित हो जाये, न सम्भव है न ही उपयोगी। साथ ही, कोई भी व्यक्तिगत मानव सत्ता, केवल अपनी ही शक्ति का प्रयोग करके, रूपान्तर का कार्य सम्पन्न नहीं कर सकती, न ही हमारे योग का यह उद्देश्य है कि हम इधर-उधर बस कुछ वैयक्तिक अतिमानव खड़े कर दें। हमारे योग का उद्देश्य है, अतिमानसिक चेतना को धरती पर उतारना, उसे यहाँ प्रतिष्ठापित करना, अतिमानसिक चेतना के सिद्धान्त पर एक नयी जाति की सृष्टि करना जो व्यक्ति के आन्तरिक तथा बाह्य जीवन के साथ-साथ सामूहिक जीवन पर भी शासन करे। इसी कारण आश्रम का होना आवश्यक था—भले यहाँ हमें व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से चाहे जितनी भी समस्याओं का सामना क्यों न करना पड़े। पार्थिव चेतना को, यानी मानव सत्ताओं को—जिनके प्रतिनिधि-रूप आश्रम के सदस्य तथा अन्य हैं—(सामान्य पार्थिव चेतना पर भी कार्य करना है) तैयार करना ही उद्देश्य है ताकि अतिमानसिक 'शक्ति' का अवतरण सम्भव हो सके। फिर, जैसे-जैसे जो प्रगति करता चलेगा, वैसे-वैसे एक के बाद दूसरे के द्वारा स्वीकृत होती हुई वह 'शक्ति' जड़-भौतिक जगत् पर अतिमानसिक चेतना को प्रतिष्ठित करती रहेगी और फिर धरती पर एक केन्द्र या व्यक्तियों का समूह बना कर अधिकाधिक अपना विस्तार करती रहेगी।

CWSA खण्ड २८, पृ. २९६

यह आश्रम अन्य आश्रमों के जैसा नहीं है—यहाँ के सदस्य संन्यासी नहीं हैं; यहाँ के योग का एकमात्र लक्ष्य मोक्ष नहीं है। यहाँ जो किया जा रहा है वह एक कार्य की तैयारी है—एक ऐसे कार्य की तैयारी जो यौगिक चेतना तथा योग-शक्ति पर आधारित होगा। इनके सिवाय इसकी और कोई नींव न होगी। साथ ही, आश्रम के प्रत्येक सदस्य से यह आशा की जाती

है कि वह अपनी आध्यात्मिक तैयारी के लिए आश्रम में कुछ-न-कुछ काम अवश्य करे। CWSA खण्ड २९, पृ. २३२

साधना का उद्देश्य, शर्तें और नियम

आमतौर पर साधनाओं का लक्ष्य होता है सच्चिदानन्द के साथ ऐक्य। और जो लोग वहाँ पहुँच जाते हैं वे अपनी मुक्ति से सन्तुष्ट होकर संसार को उसकी दुःख-भरी अवस्था में छोड़ जाते हैं। इसके विपरीत, जहाँ औरों की साधना समाप्त होती है वहाँ से श्रीअरविन्द की साधना शुरू होती है। एक बार सच्चिदानन्द के साथ ऐक्य सिद्ध हो जाये तो तुम्हें उस सिद्धि को बाह्य जगत् में उतारना और धरती पर जीवन की परिस्थितियों को बदलना चाहिये, जब तक कि पूर्ण रूपान्तर सम्पन्न न हो जाये। इस लक्ष्य के अनुसार, पूर्णयोग के साधक ध्यान-धारणा का जीवन बिताने के लिए इस जगत् से निवृत्त नहीं हो जाते। हर एक को कम-से-कम अपना एक तिहाई समय किसी उपयोगी कार्य में लगाना चाहिये। आश्रम में सभी तरह के काम होते हैं और हर एक ऐसा काम चुनता है जो उसकी प्रकृति के सबसे अधिक अनुकूल हो, लेकिन उस काम को सेवाभाव के साथ, निःस्वार्थता से करना चाहिये और हमेशा सर्वांगीण रूपान्तर के लक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिये।

इस उद्देश्य को सम्भव बनाने के लिए आश्रम की व्यवस्था इस तरह की गयी है कि सब आश्रमवासियों की उचित आवश्यकताएँ पूरी हो सकें और उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए चिन्ता न करनी पड़े।

नियम बहुत ही कम हैं ताकि हर एक अपने विकास के लिए आवश्यक, पूरी स्वाधीनता पा सके, लेकिन कुछ चीज़ों की सख़्ती से मनाही है। वे हैं : (१) राजनीति, (२) धूम्रपान, (३) मद्यपान और (४) कामकेलि।

छोटे-बड़े, जवान और वृद्ध, सभी के अच्छे स्वास्थ्य, योगक्षेम और शरीर के सामान्य विकास के लिए पूरी सावधानी बरती जाती है।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड १३, पृ. ११३-१४

युगों की प्रबल अभीप्सा हमें यहाँ 'भागवत कार्य' करने के लिए लायी है।
—श्रीमाँ

निराकार भगवती के रूप में श्रीमाँ पर ध्यान लगाना अच्छा ध्यान है और इसे जारी रखा जा सकता है, लेकिन इस योग में पूरा प्रभाव पाने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। हृदय में श्रीमाँ के व्यक्तित्व पर ध्यान करना भी आवश्यक है।...

CWSA खण्ड ३२, पृ. ६५

आश्रम का वातावरण

दिव्य स्पन्दनों से भरा स्थान है आश्रम

इसी तरह का एक स्थान ले लो, जो किन्हीं विशेष शक्तियों, विशेष स्पन्दनों से भरा हुआ है; ये स्पन्दन दृश्य और ठोस वस्तुओं के रूप में स्वयं को प्रकट नहीं करते—वे परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं, पर ये परिवर्तन चूँकि किसी एक पद्धति के अनुसार घटित होते हैं (जैसा कि सभी भौतिक वस्तुएँ करती हैं), तुम लगभग युक्तिसंगत तरीक़े से एक स्थिति से दूसरी में चले जाते हो और यह युक्तिसंगतता तुम्हें यह देखने से रोकती है कि यहाँ कोई ऐसी चीज़ है जो सामान्य जीवन से सम्बन्ध नहीं रखती। हाँ, जिन लोगों में साधारण मानसिक दृष्टि से भिन्न दूसरी कोई दर्शन-शक्ति नहीं है, जो वस्तुओं को उसी प्रकार घटित होते हुए देखते हैं जिस प्रकार कि वे साधारण जीवन में स्वभावतः घटित होती हैं अथवा घटित होती हुई प्रतीत होती हैं, वे तुमसे कहेंगे, "ओह वह, वह तो बिलकुल स्वाभाविक है।" यदि उनमें शुद्ध भौतिक अनुभव-शक्ति से भिन्न कोई दूसरी अनुभव-शक्ति न हो, यदि वे किसी स्पन्दन के गुण को अनुभव करने में सक्षम न हों (कुछ लोग अस्पष्ट रूप में उसे अनुभव करते हैं), परन्तु जो लोग उतना भी अनुभव करने में सक्षम न हों, जिनके अन्दर उससे मिलती-जुलती कोई वस्तु न हो अथवा, वह वस्तु हो तो पर जाग्रत् न हो, तो वे यहाँ के जीवन की ओर ताकेंगे और तुमसे कहेंगे, "यह भौतिक जीवन के जैसा है—सम्भवतः तुम्हारे अन्दर अपने निजी कुछ विचार हैं, परन्तु ऐसे बहुत-से लोग हैं जिनके अपने निजी विचार हैं; सम्भवतः तुम एक विशेष ढंग से काम करते हो, पर ऐसे अनेकानेक लोग भी हैं जो एक विशेष ढंग से कार्य करते हैं। आख़िरकार, यह वैसा ही जीवन है जैसा कि मैं यापन करता हूं।"... और फिर, बहुत सम्भव है कि एक विशेष क्षण में अतिमानसिक 'शक्ति' प्रकट हो, वह यहाँ सचेतन हो उठे, वह 'जड़तत्त्व' पर कार्य करे, पर जो लोग इसके स्पन्दन में सचेतन रूप से भाग न ले पायें वे उसे अनुभव करने में अक्षम हों। लोग कहते हैं, "जब अतिमानसिक शक्ति अभिव्यक्त होगी तो हम ख़ूब अच्छी तरह उसे जान जायेंगे। वह दिखायी देगी"—ऐसा ही होगा यह आवश्यक नहीं है। वे उन लोगों से ज़रा भी अधिक अनुभव नहीं करेंगे

जिनकी संवेदनशीलता कम है और जो इस स्थान से गुज़र जाते हैं, यहाँ तक कि यहाँ रहते हैं और यह अनुभव नहीं करते कि यहाँ का वातावरण अन्य स्थानों से भिन्न है—भला तुमलोगों में से कौन उसे इतने यथार्थ रूप में अनुभव करता है कि उसे दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर सके?... तुम अपने हृदय में, अपने विचार के अन्दर अनुभव कर सकते हो कि यह ठीक वैसा ही नहीं है, पर यह काफ़ी अस्पष्ट होता है, है न? परन्तु इसे ठीक-ठीक अनुभव करना...। सुनो, जैसा कि मैंने किया था जब मैं जापान से आयी थी: मैं जहाज़ पर, समुद्र में थी, किसी चीज़ की आशा नहीं कर रही थी (अवश्य ही मैं अपने आन्तरिक जीवन में व्यस्त थी, पर मैं भौतिक रूप से जहाज़ पर विद्यमान थी), तब एकाएक, अकस्मात्, पॉण्डिचेरी से लगभग दो सामुद्रिक मील की दूरी पर, वातावरण के, वायु के प्रकार में, मैं यहाँ तक कह सकती हूँ कि उसके भौतिक प्रकार में इतना अधिक परिवर्तन हो गया कि मैं जान गयी कि हम श्रीअरविन्द के ज्योति-मण्डल में प्रवेश कर रहे हैं। यह एकदम **भौतिक** अनुभव था और मैं विश्वास दिलाती हूँ कि जिस किसी व्यक्ति में पर्याप्त जाग्रत् चेतना है वह इस चीज़ को अनुभव कर सकता है।

—'श्रीमातृवाणी' खण्ड ४, पृ. २६५-६६

श्रीअरविन्द हमारी पहुँच में हैं

निस्सन्देह, अब तुम श्रीअरविन्द के साथ आसानी से सम्पर्क साध सकते हो। कइयों ने उनके साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया है और वे अपने प्रश्नों के उत्तर 'उनसे' पा लेते हैं। वे अब हमारी पहुँच में अधिक हैं और अब वे यहाँ बहुत ज़्यादा सक्रिय हैं।...

अगर कुछ सही नहीं हो रहा तो तुम उसका कारण ज़रूर जानना चाहोगे, या अगर तुम किसी कमज़ोरी से पीछा छुड़ाना, नीरोग होना, अन्दर की सफ़ाई करना या फिर पवित्र होने के लिए किसी कठिनाई को निकाल बाहर करना चाहो तो—किसी भी चीज़, किसी भी जवाब के लिए श्रीअरविन्द के पास समाधि पर आओ और तुम्हें जवाब मिल जायेगा। न केवल उनका जवाब बल्कि 'उनके' आशीर्वाद, 'उनकी' करुणा, 'उनकी' शान्ति और 'उनकी' ज्योति भी प्राप्त होंगी। 'उनका' सर्वशक्तिशाली प्रेम तुम पर हावी हो

जायेगा, उससे तुम सराबोर हो जाओगे। एक बार तुम अपने-आपको 'उनकी' बाँहों में बस छोड़ भर दो, सभी दुर्घटनाओं से तुम्हें बचा लिया जायेगा। ऐसा ही होता है—यह 'उनका' प्रभाव है। 'वे' उन सभी के सम्मुख स्वयं को प्रकट करते हैं जो सरल-सीधे हैं, सच्चे-निष्कपट और विनम्र हैं। 'वे' यहाँ उपस्थित हैं, सम्पूर्ण सचेतन रूप में हैं, और 'वे' संसार की सभी गतियों का सञ्चालन करते हैं।...

यह अपूर्व है। समाधि के चारों ओर 'उनकी' उपस्थिति स्पन्दित हो रही है, वह बहुत ठोस है। और 'उनका' प्रभाव हमारी केन्द्रीय सत्ता को भेद कर उसका स्पर्श करता है और हमारी चेतना को आध्यात्मिक जीवन की ओर जाग्रत् कर देता है। यहाँ तक कि नास्तिक, अविश्वासी, दुर्भावनावाले व्यक्ति, जो मात्र उत्सुकतावश समाधि देखने आते हैं, वे भी एक रहस्यमय कीमिया से आश्चर्यान्वित और एक आन्तरिक शान्ति से अभिभूत हो लौटते हैं, क्योंकि वहाँ वे 'अपनी' शान्ति तथा 'अपनी' करुणा की निरन्तर बौछार करते रहते हैं। जब हम समाधि पर जाते हैं तो इस सबसे सराबोर हो लौटते हैं। यह 'उनकी' शक्ति तथा 'उनकी' उपस्थिति की अभिभूत करने वाली अविश्वसनीय क्रिया है।

Blessings of the Grace पृ. १२१-२२

समाधि में 'वे' ही विराजमान हैं

जब-जब मैं समाधि को देखती हूँ कि वहाँ क्या हो रहा है तब-तब मैं चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश के इस स्तम्भ को देख कर चकित रह जाती हूँ जो एक अद्वितीय ऊर्जा तथा रूपान्तरकारी शक्ति से निरन्तर स्पन्दित हो रहा है। यह इस तरह ऊपर उठता है—*(श्रीमाँ अपने हाथों से ऊर्ध्वमुखी गति करती हैं)* समाधि की लम्बाई-चौड़ाई को घेरे हुए मानों भव्यता तथा चमक से भरा, प्रकाश का झरना हो। मूर्तरूप लेता हुआ यह 'नूतन प्रकाश' है।...

ध्यान के लिए यह पवित्र स्थान है... यहाँ बातचीत न हो। यहाँ कभी बातें न करो—इससे वातावरण बिगड़ जाता है। 'वे' अपने महिमान्वित शरीर में यहाँ विराजमान हैं तथा समस्त जगत् को सूक्ष्म गति से सहारा देते हुए 'अपनी' चेतना को क्रमशः अभिव्यक्त कर रहे हैं, जो भागवत अवतरण के

लिए आंशिक रूप से ढकी हुई है।

हमारे अन्दर की दिव्य सम्भावना के 'वे' जीवन्त आश्वासन हैं, उन 'देवता' की प्रतिज्ञा हैं जो भागवत 'प्रकाश' तथा भागवत 'शक्ति' के साथ स्वयं को प्रसारित कर रहे हैं, जो हमें क्रमशः 'भागवत अभिव्यक्ति' की ओर लिये जा रहे हैं। इसी कारण यहाँ का सारा वातावरण एक दिव्य तथा उदात्त 'शान्ति' से भरा हुआ है, समझ रहे हो? वहाँ 'वे' ही हैं—दिव्य शरीर में हैं—स्वयं वे दिव्यभावापन्न हैं, वे ही समस्त मानवता के प्रतीक-रूप हैं, उन्होंने ही अपने प्रयास, अपनी तपस्या तथा अपनी साधना द्वारा अपने शरीर को भव्य बना लिया है। जो उपलब्धियाँ तथा अनुभूतियाँ उन्हें हुई हैं उन्हें यौगिक प्रयास द्वारा उन्होंने अपने शरीर में सञ्चित कर लिया है और एक रूपान्तरकारी शक्ति से अपना शरीर आवेष्टित कर दिया है। उनका शरीर उफनती हुई शक्ति तथा प्रकाश के द्वारा ऊर्जस्वी रूप में गतिशील है; ये चीज़ें समस्त वातावरण में व्याप्त हैं। चारों तरफ़ 'उन्हीं' की उपस्थिति है। यह सब इसी कारण टिका हुआ है क्योंकि यह अतिमानसिक शक्ति है जिसका कभी ह्रास नहीं होता। इसका ह्रास हो ही नहीं सकता।

जब लोग समाधि का चक्कर लगाते हैं तब वे इसी को आत्मसात् करते हैं। न जानते हुए भी वे 'उन्हीं' के प्रेम में स्नान करते हैं और उन्हें इसका पता ही नहीं होता कि समाधि के निकट आने पर वे इतने भौचक्के क्यों रह जाते हैं। यह विस्मयकारी है!... जो उद्घाटित हैं और इससे जाग्रत् हो जाते हैं वे अपनी सत्ता को 'चार्ज' करने तथा अपनी सत्ता में यहाँ के वातावरण में व्याप्त इस 'शान्ति' को आत्मसात् करने के लिए लौट-लौट कर यहाँ आते हैं। 'उनकी' उपस्थिति इतनी ठोस और इतनी जीवन्त है—मानों एक सचेतन विशालता है जो इस वातावरण पर पूरी तरह से छा गयी है और इसमें अपने स्पन्दन भर रही है। मैं देख रही हूँ कि कितना सुखद है इन प्रकाशों और रंगों में तैरना, पकड़ में न आने वाले हर्ष के सौन्दर्य, पवित्रता तथा उपस्थिति में स्नान करना, जो यद्यपि दुर्ग्राह्य हैं फिर भी प्रायः भौतिक भी कहे जा सकते हैं और जो ऐसी मधुरता को साथ लिये चलते हैं जो अभी तक जगत् के लिए अज्ञात है। मुझे लगता है कि एक ऐसा हृदय जो दत्तचित्त हो, उत्कटता के साथ प्रभु को पाने की अभीप्सा करे, अगर वह समाधि के सम्मुख खड़ा होकर 'उनके' परमानन्द के सिवाय

और किसी भी चीज़ की कामना न करे तो वह आनन्द के एक ऐसे लोक में उठा दिया जायेगा जहाँ सर्व-समर्थकारी स्वर्गों या धरती ने अब तक जितने आनन्द का अनुभव किया है उससे कहीं अधिक सुखद तथा उच्चतर आनन्द बसता है।

उनके शिष्य तथा वे सभी जो श्रीअरविन्द के साथ अपनी चेतना को एकात्म करने की उत्कट अभीप्सा करते हैं—श्रीअरविन्द जो अपनी प्रतापी उपस्थिति से इस स्थान पर प्रभुत्व रखते हैं—वे अभीप्सु 'उनकी' ऐश्वर्यशालिनी उपस्थिति की महानता का उतने ही ठोस रूप में अनुभव करते हैं जिस प्रकार तुम मुझे यहाँ देखते हो। और जो लोग उनके साथ सम्पर्क साधना चाहते हैं वे निश्चित रूप से उनसे अपने प्रश्नों के उत्तर पा लेते हैं। वे यहाँ उपस्थित हैं—'अपनी' समस्त शक्ति के साथ सर्वशक्तिमान् रूप में वे यहाँ विराजते हैं और परदे के पीछे से सतत आग्रह तथा आश्चर्यकारी धीरज के साथ, लेकिन साथ ही कृतसंकल्प वे एक के बाद एक विजयें प्राप्त करते हुए—जैसा कि उनका कार्य करने का तरीक़ा है—'नूतन सृष्टि' का सञ्चालन कर रहे हैं; साथ ही वे मानवजाति की चेतना को बदलने, सभी आयामों में उसे रूपान्तरित करने के कार्य में संलग्न हैं। वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि इसमें उन्हें बहुत प्रतिरोधों का सामना करना पड़ेगा, मानवजाति बार-बार पतन के गर्त में जा गिरेगी; लेकिन देखा जाये तो ये क्षणिक पतन मानवजाति को बाधाओं से पार लगाने में भी बहुधा सहायक होते हैं और अगर मानवता सचेतन बन जाये तो वह देखेगी कि यह एक वैश्व गति है जो 'उनकी' ज्योति को इस धरा की शान्ति में उतार लायेगी। और सबसे बड़ी बात यह है कि इस सबका आधार आध्यात्मिकता है, वे तथाकथित कृत्रिम धार्मिक आन्दोलन नहीं जिनके सार में होती हैं स्वैर कल्पनाएँ, युद्ध तथा अनावश्यक कलह।...

Blessings of the Grace पृ. १२२-२५

आश्रम का वातावरण

घर नहीं, जिसका मूल्य है वह है, आन्तरिक सामीप्य।

यह सच है कि आश्रम के वातावरण से एक प्रबल शक्ति बाहर जाती है और स्वाभाविक है कि आश्रम-केन्द्र में वह प्रबलतम है। लेकिन केन्द्र में

उसका कैसा प्रभाव होता है यह ग्रहण करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है। अगर वह उसे निष्कपट भरोसे, श्रद्धा, उद्‌घाटन तथा विश्वास के साथ ग्रहण करे तो वह सम्पूर्ण सुरक्षा के रूप में कार्य करती है। साथ ही यह भी सच है कि यह दूर से भी उसी तरह काम कर सकती है।

*

आश्रम का परिवेश, उसकी सीमाएँ क्या हैं? वह प्रत्येक घर जिसमें साधक रहते हैं आश्रम की सीमा के अन्दर है। बड़ी अजीब बात है कि लोग यह मानते हैं और कहते हैं कि आश्रम के अहाते में जितने घर हैं बस वही आश्रम का दायरा है—यह एकदम बेतुकी बात है। या फिर क्या वे यह सोचते हैं कि श्रीमाँ या मेरा प्रभाव बस इसी अहाते में ही सीमित है?

*

आश्रम में दो तरह के वातावरण हैं, हमारा तथा साधकों का। जब ऐसे व्यक्ति जिनमें अनुभूति पाने की कुछ क्षमता हो, बाहर से यहाँ आते हैं तब वे यहाँ के वातावरण की गभीर अचञ्चलता तथा शान्ति का अनुभव पाकर भौचक्के रह जाते हैं, बाद में जब साधकों से उनका मेल-जोल हो जाता है तब बहुत बार उनकी धारणा और वह प्रभाव धुँधला-सा पड़ जाता है, क्योंकि बहुधा साधकों के वातावरण की उदासी या चञ्चलता के वे शिकार हो जाते हैं। हाँ, अगर वे श्रीमाँ के प्रति उद्‌घाटित रहें—जैसा कि उन्हें होना चाहिये—तब वे उसी अचञ्चलता तथा शान्ति में रहेंगे, उदासी या चञ्चलता उन्हें छू तक न पायेगी।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ६३०-३१, ६३२

... परिवेश का निश्चय ही व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है... यही कारण है कि तुम जहाँ रहो वहाँ अपना एक वातावरण बना लो (निश्चित रूप से उचित तरीक़े का वातावरण) और उसे बनाये रखो, तब तुम देखोगे कि सभी दूसरे अनुचित स्पन्दन वातावरण से झड़ जायेंगे।

—श्रीअरविन्द

ज़ीने पर चढ़ते समय मेरे अन्दर बड़ी तीव्र लालसा जागी कि मैं श्रीमाँ के कमरों के दर्शन कर आऊँ। 'क्ष' ने सुझाव दिया कि कठिनाई के समय व्यक्ति को श्रीमाँ के निकट जाना चाहिये।

लेकिन श्रीमाँ के निकट जाने के लिए तुम्हें अपने आन्तरिक कक्षों में प्रवेश करना चाहिये, बाहरी में नहीं। क्योंकि आन्तरिक कक्षों में तुम हमेशा प्रवेश कर सकते हो और ऐसी व्यवस्था भी कर सकते हो कि वहीं बस जाओ। CWSA खण्ड ३२, पृ. ४९६-९७

पूर्णयोग की साधना की शर्तें

पथ पर सीधा कूच करना चाहिये

प्रत्येक का साधना करने और भगवान् तक जाने का अपना तरीक़ा होता है और दूसरे उसे कैसे करते हैं इसमें उसे माथापच्ची नहीं करनी चाहिये; उनकी सफलता, असफलता, उनकी कठिनाइयाँ, उनके भ्रम, उनका अहंकार और दम्भ सब कुछ का श्रीमाँ के साथ वास्ता है; माँ के अन्दर अनन्त धैर्य है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे साधकों के दोषों को उचित ठहराती हैं या वे जो कुछ कहें उसे स्वीकार करती हैं। किसी भी कलह, प्रतिरोध या वाद-विवाद में माताजी किसी की तरफ़ नहीं होतीं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि अगर वे लोग अनुचित बात कहें या करें तो उसे वे उचित ठहराती हैं। आश्रम या आध्यात्मिक जीवन कोई ऐसा रंगमंच नहीं जहाँ कुछ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी या यह प्रतियोगिता का कोई अखाड़ा नहीं जिसमें कुछ लोग अपने को दूसरों से श्रेष्ठतर घोषित कर दें। ये सारी चीजें साधारण मनुष्य के मनोभाव की सांसारिक खोजे हैं और इन्हें साधना के जीवन में भी लिये-लिये चलने की उनकी प्रवृत्ति होती है, लेकिन यह चीज़ों का आध्यात्मिक सत्य नहीं है।... माताजी साधकों की परस्पर आलोचनाओं पर न तो ध्यान देती हैं न ही कोई महत्त्व। केवल तभी जब साधक आध्यात्मिक स्तर से इन चीज़ों की तुच्छता देखे, यह सम्भव होता है कि वह इनका बहिष्कार कर, पथ पर सीधा कूच कर दे।
CWSA खण्ड ३२, पृ. ३९८

आश्रम में ध्यान

जो ध्यान हमलोग पहले वहाँ (आश्रम में) किया करते थे, जो कि सवेरे होता था या शाम को, उसमें मेरा काम था सबकी चेतना को एक कर देना और उसे भगवान् की ओर यथासम्भव अधिक-से-अधिक ऊँचाई तक उठा देना। जो लोग इस क्रिया को अनुभव करने में समर्थ थे वे उसका अनुसरण करते थे। यह साधारण ध्यान होता था जिसमें एक अभीप्सा होती थी तथा भगवान् की ओर आरोहण होता था। यहाँ, खेल के मैदान में, मेरा काम है उन सब लोगों को जो यहाँ हैं, युक्त कर देना, उन्हें उन्मीलित कर

देना तथा उनके अन्दर दिव्य शक्ति को **उतार लाना**। यह उलटी क्रिया है और यही कारण है कि यह एकाग्रता उस ध्यान का स्थान नहीं ले सकती, ठीक वैसे ही जैसे कि वह ध्यान इस एकाग्रता का स्थान नहीं ले सकता। यहाँ जो कुछ घटित होता है वह असामान्य बात है—दूसरे ध्यान में (जो आश्रम में होता था), वहाँ जो लोग होते थे मैं उन सबकी चेतना को एक साथ एकत्र कर लेती थी और अभीप्सा की शक्ति के द्वारा उसे भगवान् की ओर ऊपर उठा देती थी, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की थोड़ी प्रगति करा देती थी। दूसरी ओर यहाँ, तुम जैसे हो उसी रूप में मैं तुम्हें लेती हूँ; तुममें से प्रत्येक व्यक्ति यह कहते हुए आता है, "हम यहाँ अपने सारे दिन के क्रिया-कलापों के साथ उपस्थित हैं; हम अपने शरीर के साथ व्यस्त रहे हैं, यह रहा वह शरीर, हम अपनी सभी गतिविधियों को, जैसी कि ये हैं, अपने-आपको, जैसे कि हम हैं, आपको समर्पित कर रहे हैं।" और मेरा काम है उस सबको एक कर देना, उसे एक सजातीय स्तूप में बदल देना और इस आत्मार्पण के उत्तर में (जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी ढंग से कर सकता है), प्रत्येक चेतना को खोल देना, ग्रहणशक्ति को बढ़ा देना, इस ग्रहणशीलता की एक इकाई बना देना और 'शक्ति' को उतार लाना। अतः, उस समय तुममें से प्रत्येक व्यक्ति, यदि वह बहुत अचञ्चल और एकाग्र हो तो, अवश्य कुछ-न-कुछ ग्रहण करेगा। तुम सर्वदा इसके बारे में सचेतन नहीं रहोगे, फिर भी कुछ-न-कुछ ग्रहण करोगे ज़रूर।

मार्च १९६४ में श्रीमाँ से निम्नलिखित प्रश्न पूछा गया था:

और अब, जब कि भौतिक रूप में आप खेल के मैदान में की जाने वाली एकाग्रता में उपस्थित नहीं रहतीं, क्या घटित होता है?

मैं आशा करती हूँ कि लोगों ने कुछ प्रगति कर ली है और 'सहायता' और 'शक्ति' को अनुभव करने के लिए उन्हें भौतिक उपस्थिति की आवश्यकता नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १२४-२५

सच्चे कर्मयोग की भावना

निस्सन्देह, यहाँ रह कर कार्य करना और बाहर के जगत् में रह कर कार्य करना समान नहीं है। वहाँ का कार्य विशेष रूप से भागवत कार्य नहीं है; लेकिन फिर भी यह इस भाँति अलग है कि साधकों को इसे कर्मयोग के मनोभाव से में करने की कोशिश करनी चाहिये—वस्तुतः, अपने-आपमें काम का नहीं बल्कि उस भाव का महत्त्व होता है जिसमें वह किया जाता है। *गीता* के अनुसार हमें सभी कर्म कामना के बिना, अनासक्त होकर, बिना जुगुप्सा या घृणा के, यथासम्भव उत्तम तरीक़े से करने चाहियें—अपने परिवार को ख़ुशी देने के लिए, अपनी पदोन्नति या अपने अधिकारियों की प्रसन्नता के लिए कार्य मत करो—करो केवल इस भावना के साथ कि चूँकि तुम्हें यह सौंपा गया है इसलिए इसे करना है। यह आन्तरिक प्रशिक्षण का क्षेत्र है, और कुछ नहीं। कर्म करते हुए तुम्हें तीन चीज़ें सीखनी चाहियें—समानता, अनासक्ति और समर्पण-भाव। मैं फिर कहूँगा कि स्वयं कार्य का नहीं बल्कि उसे करने के तरीक़े का मूल्य है, उसे तुम्हें प्रभु को समर्पित कर देना चाहिये। इस तरीक़े से किया गया कार्य चाहे जो हो, वह महत्त्वपूर्ण हो उठता है। अगर तुम आध्यात्मिक रूप से इस तरह स्वयं को प्रशिक्षित करते रहो तो तुम सच्चे भाव में वह सब करने के लिए तैयार हो जाओगे जो सीधा भगवान् से आया हो (उदाहरण के लिए आश्रम का कार्य) और किसी भी दिन यह तुम्हें सौंपा जा सकता है।

CWSA खण्ड २९, पृ. २४०-४१

साधक के लिए एक नियम

तुम्हारे लिए मैं एक नियम लागू कर सकता हूँ, "ऐसा कोई काम मत करो, कोई बात न कहो या सोचो जिसे तुम श्रीमाँ से छिपाना चाहो।" तुम्हारे अन्दर जो आपत्तियाँ उठीं—प्राण से उठीं न?—कि श्रीमाँ के सम्मुख "इन तुच्छ चीज़ों" को क्यों रखा जाये? तो उनका यही उपर्युक्त जवाब है। भला तुम यह क्यों मानते हो कि माताजी इन चीज़ों से परेशान हो जायेंगी या वे उन्हें तुच्छ चीज़ें मानती हैं? अगर *सारा* जीवन ही योग है तो किसे तुच्छ या महत्त्वहीन कहा जायेगा? अगर तुम अपनी किसी क्रिया या अपनी प्रगति के किसी मामले को उचित मनोवृत्ति के साथ श्रीमाँ के सम्मुख रखो, यानी

उनकी सुरक्षा, 'सत्य' के प्रकाश, उनकी उस 'शक्ति' की किरण-तले रखो जो रूपान्तर के लिए कार्य कर रही है तो भले श्रीमाँ कोई मौखिक उत्तर न दें फिर भी, उनकी वे किरणें तत्काल उस मामले को अपने हाथ में ले लेती हैं। जब वे क्रिया करती हैं और तुम्हारे अन्दर की कोई भावना तुम्हें उस पर कान देने से मना करे तो समझ लो कि यह प्राण की कोई चाल है जो 'प्रकाश' की किरणों तथा 'शक्ति' की क्रियाओं से बचना चाहती है। तुम यह भी देख सकते हो कि अगर तुम स्वयं को श्रीमाँ के प्रति उद्‌घाटित कर दो, यानी अपनी क्रियाओं तथा गतियों को उनके निरीक्षण में रख दो तो इससे तुम उनके साथ एक सम्बन्ध जोड़ लोगे, एक आत्मीय सम्बन्ध। वैसे उनकी शक्ति आश्रम के वातावरण पर छायी रहती है, और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रत्येक साधक को सतत सहारा देती रहती है।

निस्सन्देह ऐसा तभी होता है जब तुम इस उद्‌घाटन के लिए स्वयं को प्रस्तुत अनुभव करो और सर्वांगीण रूप से अपने-आपको 'उनके' चरणों में निवेदित कर दो। क्योंकि उद्‌घाटन तभी सम्पूर्ण तथा फलप्रद होता है जब यह सच्चाई के साथ, सहज रूप से तुम्हारे अन्दर से आये।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ४४९

हमारे योग का लक्ष्य भगवान् हों

यह पुराना विचार कि साधकों को एक दूसरे से एकदम पृथक् रहना चाहिये, न कोई सम्बन्ध हो, न कोई आदान प्रदान, और यह कि हमेशा वे एक दूसरे के प्रति तलवारें ताने खड़े रहें, इसे हमें पूरी तरह से त्यागना होगा। सच्चे यौगिक जीवन का मूलमन्त्र है सामञ्जस्य। योग के बारे में ये पूर्वकल्पित विचार शायद निर्वाण की प्राचीन धारणा से आये हैं कि निर्वाण ही लक्ष्य है; लेकिन यहाँ, हमारी साधना का लक्ष्य निर्वाण नहीं है। हमारा लक्ष्य है, जीवन में, इस धरती पर भगवान् को चरितार्थ करना, और उसके लिए उनके साथ तादात्म्य प्राप्त करना अनिवार्य होता है। ... यहाँ हमें एक दूसरे के प्रति द्वेष या क्लेश नहीं रखना चाहिये, निस्सन्देह ये सब अयौगिक चीज़ें हैं। हमारे योग का लक्ष्य है कि हमारे जीवन के केन्द्र भगवान् होने चाहियें, और यहाँ के साधकों का जीवन उसी दृढ़ नींव पर टिका होना चाहिये, उनके वैयक्तिक सम्बन्धों की धुरी भी ईश्वर

ही होने चाहियें। इसके साथ-साथ सभी प्राणिक गतियों, जैसे, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध तथा दुष्ट प्राणिक भावनाओं का त्याग करना अनिवार्य है; उसी तरह, समस्त स्वार्थभरे प्रेम तथा आसक्तियों को छोड़ देना होगा, क्योंकि ये चीज़ें आध्यात्मिक जीवन का हिस्सा क़तई नहीं हो सकतीं—ऐसा प्रेम जो केवल अहंकार के वशीभूत हो प्रेम करता है और जैसे ही अहं को चोट लगती है या वह असन्तुष्ट हो जाता है वह प्रेम करना छोड़ देता है, यहाँ तक कि ईर्ष्या और घृणा में बदल जाता है। प्रेम के पीछे जीवन्त तथा स्थायी ऐक्य होना चाहिये। निस्सन्देह, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कामुक अशुद्धियों इत्यादि का यहाँ कोई स्थान नहीं, और इनसे एकदम पल्ला छुड़ा लेना चाहिये।

CWSA खण्ड ३१, पृ. २८८-८९

मैत्री तथा प्रेम अनिवार्य स्वर हैं

इस आश्रम में सभी एक दूसरे से अनासक्त नहीं हैं, और न ही मैत्री तथा स्नेह का इस योग से बहिष्कार कर दिया गया है। साधना में भगवान् के साथ मैत्री एक मान्य सम्बन्ध है। साधकों के बीच मैत्री होती है और माताजी इसे बढ़ावा देती हैं। बस हम इसका आधार पुख़्ता बनाना चाहते हैं, अधिकतर मनुष्यों की मैत्री कच्ची नींव पर टिकी होती है। चूँकि हम मैत्री, भ्रातृभाव, प्रेम इत्यादि को पवित्र वस्तुएँ मानते हैं, हम यह बदलाव लाना चाहते हैं—क्योंकि हम अहंकार की गतियों के द्वारा इसे पल-पल ट ूटते हुए, आवेशों, ईर्ष्याओं, विश्वासघातों से—जिनकी ओर प्राण हमेशा झुका रहता है—इसे दूषित होते हुए नहीं देखना चाहते, हम इसे सचमुच पवित्र और सुरक्षित बनाना चाहते हैं, इसलिए हम चाहते हैं कि इसकी जड़ें आत्मा में गहरे उतरें और यह भागवत चट्टान पर दृढ़तापूर्वक जमी रहे। हमारा योग तापसिक योग नहीं है : इसका लक्ष्य पवित्रता है; लेकिन भावशून्य, कठोर तपस्या नहीं। हम जिस सामञ्जस्य की अभीप्सा करते हैं उसमें मैत्री और प्रेम अनिवार्य सुर हैं। हमारा योग ख-पुष्प, कोई कपोल या निरर्थक कल्पना नहीं है, हमने देखा है कि अपूर्ण अवस्थाओं में भी, अगर अनिवार्य तत्त्व का अंशमात्र भी होता है तो हम इस योग के मूल तक पहुँच सकते हैं। यह है तो कठिन, क्योंकि मानव प्रकृति की पुरानी आदतें,

बाधाएँ उसके साथ चिपकी रहती हैं और वह पुराने ढर्रे पर बार-बार जा गिरता है। लेकिन कोई भी विजय यूँ ही नहीं पायी जा सकती, उसके लिए व्यक्ति को बड़े धीरज के साथ लक्ष्य पर सतत टकटकी बाँधे रहना चाहिये, तभी श्रमसाध्य प्रयास के बाद वह लक्ष्य के निकट पहुँच सकता है। डटे रहने के अलावा और कोई चारा नहीं है।

CWSA खण्ड ३१, पृ. २९४-९५

गृहस्थ तथा संन्यासी

यहाँ गृहस्थ तथा संन्यासी के बीच भेद करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि हमारे लिए वह भेद अस्तित्व ही नहीं रखता। कम-से-कम यहाँ सामान्य प्रकार के संन्यासी के लिए कोई स्थान नहीं, क्योंकि हम जीवन को पीठ नहीं दिखाते; न हम गृहस्थ ही हैं, क्योंकि हम अपने साधारण मानव जीवन को, उसकी प्रथाओं और उसके उद्देश्यों को पीछे छोड़ कर यहाँ आये हैं।...

यहाँ का सचमुच लाभ उठाने के लिए केवल दो प्रकार के लोग रह सकते हैं;

१. वे, जो आध्यात्मिक वातावरण को आत्मसात् करने और अपने-आपको बदलने के लिए तैयार हैं।

२. वे, जो भले अब तक तैयार नहीं हैं, लेकिन फिर भी, प्रभाव के प्रति निरन्तर आत्म-समर्पण करते हुए स्वयं को धीरे-धीरे तैयार कर सकते और कर रहे हैं।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५६३-६४

परीक्षण-काल

मैंने तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी, उस पर ग़ौर किया; और निश्चय किया कि तुम यहाँ रह सकते हो, जैसी कि तुमने माँग की—बहरहाल, शुरुआत में तुम आश्रम में दो-तीन महीनों तक रहो और यह देखो कि क्या सचमुच यही वह स्थान और वह पथ है जिसे तुम ढूँढ़ रहे हो, और साथ-साथ हम भी तुम्हारी आध्यात्मिक सम्भावनाओं को निकट से देख पायेंगे, और यह देख लेंगे कि क्या तुम्हारे लिए यह योग उत्तम है और यह कि हम अधिकाधिक

तुम्हारी सहायता किस तरह कर सकते हैं।

कई कारणों से यह परीक्षण अनिवार्य है, लेकिन विशेष रूप से इसलिए कि इस योग का अनुसरण करना कठिन है और ऐसे बहुत नहीं हैं जो इसकी माँगों को सचमुच पूरा कर सकें। तुमने लिखा कि तुमने मेरे अन्दर ऐसा पुरुष देखा जो बुद्धि की सम्पूर्णता द्वारा आध्यात्मिकता तथा ईश्वरत्व तक पहुँच गया है; लेकिन वस्तुतः मैं मन की पूर्ण निश्चल-नीरवता द्वारा यहाँ तक पहुँचा हूँ, और मेरे मन ने जितनी भी आध्यात्मिकता तथा ईश्वरत्व प्राप्त किया है वह सब उस नीरवता में उच्चतर अधिभौतिक ज्ञान के अवतरण का ही परिणाम है। *'गीता-प्रबन्ध'* पुस्तक मैंने बौद्धिक प्रयास के बिना, मन की इसी नीरवता और ऊपर से अवतरित इसी ज्ञान की मुक्त क्रिया के द्वारा लिखी। यह महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इस योग का सिद्धान्त केवल मानव स्वभाव की पूर्णता नहीं, बल्कि पहले आन्तरिक, फिर उच्चतर चेतना की क्रिया के द्वारा सत्ता के सभी भागों का चैत्य तथा आध्यात्मिक रूपान्तर है, वह उच्चतर चेतना ही उन भागों पर क्रिया करती है, स्वभाव की पुरानी गतियों को निकाल फेंकती या उन्हें अपनी प्रतिमा में गढ़ कर, निम्नतर को उच्चतर में रूपान्तरित कर देती है। यह बुद्धि की पूर्णता प्राप्त करना या उसके परे जाना नहीं है। यह है मन का पूरी तरह से रूपान्तरण; एक विशालतर तथा उच्चतर ज्ञान का सिद्धान्त हमारे वर्तमान मन के स्थान पर आयेगा—यही समान बात सत्ता के अन्य सभी भागों पर भी लागू होगी।

यह धीमी तथा कठिन प्रक्रिया है; रास्ता लम्बा है और आवश्यक भूमि तैयार करने में भी बहुत परिश्रम लगेगा, क्योंकि पुराना स्वभाव प्रतिरोध करता और बाधाएँ डालता है तथा समस्याएँ तब तक बार-बार सिर उठाती ही रहती हैं जब तक उन पर विजय नहीं पा ली जाती। इसलिए, यह ज़रूरी है कि इस पथ पर कूच करने का निश्चय करने से पहले अन्ततः तुम्हारे अन्दर इस बात का पूरा-पक्का विश्वास हो कि *यही है वह एकमात्र मार्ग जिस पर मैं सुनिश्चित रूप से चलना चाहता हूँ।*

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५८५-८६

संघर्ष और इलाज

यहाँ सभी तरह के, सभी स्तरों के साधक हैं। लेकिन वे, जो काफ़ी

प्रगति कर चुके हैं, उनके लिए भी सच्ची कठिनाई बाहरी मनुष्य, यानी उनकी बाहरी प्रकृति से उठती है। अच्छे-अच्छे आदर्श तथा पहुँचे हुए साधकों की भी बाहरी प्रकृति प्रायः समान बनी रहती है। आन्तरिक सत्ता स्वतन्त्र हो जाती है, लेकिन बाहरी वही ढाक के तीन पात ही बनी रहती है। हमारा योग तभी सफल हो सकता है जब बाह्य मनुष्य भी बदल जाये, लेकिन यही है सभी चीज़ों में सबसे कठिन चीज़। केवल भौतिक चेतना के बदलाव तथा उच्चतम प्रकाश का प्रकृति के निम्नतम भाग में अवतरण के द्वारा ही यह किया जा सकता है। संघर्ष यहीं चल रहा है। यहाँ के अधिकतर साधकों की आन्तरिक सत्ता—भले वह कितनी भी अपूर्ण क्यों न हो—सामान्य मनुष्य की अपेक्षा भिन्न होती है, लेकिन उनका बाहरी स्वभाव वही अपने पुराने तरीक़ों, रीति-रिवाजों और आदतों से बँधा रहता है। कई लोग तो लगता है कि इस बाहरी बदलाव की आवश्यकता के प्रति जागरूक भी नहीं हैं। जब यह सिद्ध हो जायेगा, केवल तभी हमारा योग आश्रम में अपने सम्पूर्ण परिणामों के साथ प्रकट होगा, उससे पहले नहीं।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५९१

हमारा लक्ष्य न तो राजनीतिक है, न सामाजिक, वह आध्यात्मिक लक्ष्य है। हम जो चाहते हैं वह वैयक्तिक चेतना का रूपान्तर है, शासन या सरकार का परिवर्तन नहीं। उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हम किसी मानव साधन पर विश्वास नहीं करते, चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो। हमें केवल 'भागवत कृपा' पर विश्वास है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ११४

योग के लिए आना

जीवन से और लोगों से घृणा और विरक्ति के कारण इस योग के लिए नहीं आना चाहिये।

कठिनाइयों से भाग जाने के लिए यहाँ नहीं आना चाहिये।

प्रेम की मधुरता और संरक्षण पाने के लिए भी यहाँ नहीं आना चाहिये, क्योंकि यदि व्यक्ति उचित मनोभाव अपनाये तो भगवान् के प्रेम और संरक्षण का आनन्द हर जगह मिल सकता है।

जब तुम अपने-आपको पूर्णतया भगवान् की सेवा में दे देना चाहो, जब अपने-आपको पूर्णतया भगवान् के कार्य के लिए समर्पित करना चाहो, अपने-आपको देने और सेवा करने के आनन्द के लिए देना चाहो, बदले में कुछ माँगे बिना—अपने-आपको देने और सेवा करने की सम्भावना को छोड़ कर—तो तुम यहाँ आने के लिए तैयार हो और तुम द्वार को पूरी तरह खुला पाओगे।

मैं तुम्हें वही आशीर्वाद देती हूँ जो मेरे सभी बच्चों को मिलते हैं, वे चाहे संसार में कहीं भी क्यों न हों, और तुमसे कहती हूँ : "अपने-आपको तैयार करो, मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी।"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ११७-१८

पथ पर डटे रहो

तुम सभी, मेरे बच्चो, मैं तुमसे यह कह सकती हूँ, मैंने यह कई बार दोहराया है और एक बार फिर दोहरा रही हूँ—तुमलोग एक असाधारण स्वतन्त्रता में जी रहे हो। बाहरी रूप में छोटी-मोटी सीमाएँ हैं, क्योंकि, तुमलोग काफ़ी संख्या में हो और सारी पृथ्वी तुम्हारे सुपुर्द नहीं की गयी है, इसलिए एक हद तक किसी अनुशासन का अधिकार मानना पड़ता है ताकि बहुत अव्यवस्था न फैलने पाये; लेकिन आन्तरिक रूप में तुमलोग एक अनूठी स्वतन्त्रता में जी रहे हो : न सामाजिक बन्धन, न नैतिक बन्धन, न कोई बौद्धिक बन्धन, कोई नियम नहीं, कुछ नहीं, केवल एक प्रकाश है यहाँ। अगर तुम उससे लाभ उठाना चाहते हो तो तुम लाभ उठाते हो; अगर नहीं उठाना चाहते तो उसके लिए भी तुम स्वतन्त्र हो।

लेकिन जिस दिन तुम चुनाव कर लो—जब तुमने वह चुनाव अपनी पूरी सच्चाई के साथ किया हो, और अपने अन्दर एक मौलिक संकल्प का अनुभव किया हो—तब बात अलग है। अनुसरण करने के लिए तब एक बिलकुल सीधा पथ और एक प्रकाश होता है, और उससे तुम्हें च्युत नहीं होना चाहिये। जानते हो, वह किसी को धोखा नहीं देता; योग कोई मज़ाक नहीं है। जब तुम चुनाव करो तो तुम्हें मालूम होना चाहिये कि तुम क्या कर रहे हो। लेकिन एक बार चुन लो तो तुम्हें उस पर डटे रहना चाहिये। तब तुम्हें आगा-पीछा करने का कोई अधिकार नहीं रहता। तुम्हें बिलकुल

सीधे आगे बढ़ना चाहिये। लो!

मैं जिस चीज़ की माँग कर रही हूँ वह है भली-भाँति करने का संकल्प, प्रगति के लिए प्रयास और साधारण मनुष्यों से कुछ अधिक अच्छा जीवन जीने की चाह। तुम बड़े हुए हो, तुम्हारा विकास असाधारण रूप से प्रकाशमान, सचेतन, सामञ्जस्यपूर्ण और सद्भावनापूर्ण परिवेश में हुआ है; और इस परिवेश के उत्तर में तुम्हें जगत् में इसी प्रकाश, इसी सामञ्जस्य, इसी सद्भावना की अभिव्यक्ति बनना चाहिये। यह अपने-आपमें बहुत अच्छा होगा, बहुत अच्छा।

इस योग को, रूपान्तरण के इस योग को, जो सभी चीज़ों में सबसे अधिक दुःसाध्य है, केवल तभी करो जब तुम यह अनुभव करो कि तुम यहाँ इसीलिए आये हो (यहाँ से मेरा मतलब है पृथ्वी पर) और इसके सिवाय तुम्हारा कोई काम नहीं है, कि तुम्हारे अस्तित्व का यही एकमात्र कारण है—चाहे इसके लिए तुम्हें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़े, कष्ट उठाने पड़ें, संघर्ष करने पड़ें, उसका कोई महत्त्व नहीं—"मैं यही चाहता हूँ, और कुछ नहीं"—तब और बात है। वरना मैं कहूँगी: "खुश रहो और नेक बनो, केवल इसी की मैं तुमसे माँग करती हूँ। नेक होने का अर्थ समझदार होने से है, यह जानना कि जिन अवस्थाओं में तुम पले वे असाधारण हैं, और साधारण जीवन से अधिक ऊँचा, अधिक श्रेष्ठ, अधिक सच्चा जीवन जीने की कोशिश करो, ताकि इसके द्वारा इस चेतना का, इस प्रकाश का और इसकी नेकी का थोड़ा-सा अंश धरती पर अभिव्यक्त हो सके। यह बहुत अच्छा होगा।" बस यही।

लेकिन एक बार योग-मार्ग पर क़दम रख लिया तो तुम्हारे अन्दर इस्पात का संकल्प होना चाहिये और, किसी भी क़ीमत पर, तुम्हें सीधे लक्ष्य की ओर ही बढ़ना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. २२२-२३

श्रीमाँ का तरीक़ा

तुममें से अधिकतर यहाँ तब आये जब तुम बहुत छोटे थे, तुम्हारी ऐसी उम्र थी जब आध्यात्मिक जीवन का या आध्यात्मिक शिक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता—वह बिलकुल असामयिक होता। तुम यहाँ के वातावरण में

रहे पर उसे जाने बिना; तुम मुझे देखने के, मेरी बातें सुनने के अभ्यस्त हो; मैं तुम्हारे साथ ऐसे बात करती हूँ जैसे सभी बच्चों के साथ की जाती है, मैं तुम्हारे साथ खेली भी हूँ, जैसे कोई बच्चों के साथ खेलता है; तुम्हें बस यहाँ आना और बैठना होता है और तुम मुझे बोलते हुए सुनते हो, तुम्हें सिर्फ़ प्रश्न करना होता है और मैं उत्तर दे देती हूँ। मैंने कभी किसी को कोई बात बताने से इन्कार नहीं किया। यह इतना सरल है। बस इतना काफ़ी है... जीना—सोना, खाना, व्यायाम करना और विद्यालय में अध्ययन करना। तुम यहाँ वैसे ही रहते हो जैसे कहीं बाहर रहते। और इसीलिए, तुम इसके आदी हो गये हो।

यदि मैंने कड़े नियम बनाये होते, यदि मैंने कहा होता: "मैं तुम्हें तब तक कुछ नहीं बताऊँगी जब तक तुम उसे जानने के लिए सचमुच प्रयास नहीं करते," तो शायद तुम कुछ प्रयास करते, पर नहीं, यह मेरे विचारों से मेल नहीं खाता। कठोर शिक्षा की अपेक्षा मैं वातावरण की शक्ति और उदाहरण पर ज़्यादा विश्वास करती हूँ। मैं विधिवत्, अनुशासित प्रयत्न की अपेक्षा मूक सञ्चार द्वारा सत्ता में कुछ जगा देने पर ज़्यादा भरोसा करती हूँ।

शायद, अन्ततः, कोई चीज़ तैयार हो रही है और एक दिन वह सतह पर फूट निकलेगी।

मैं इसी की आशा करती हूँ।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ४०४-०५

आभासों पर अपनी राय मत दो

सहज भाव से, और इस विषय में सचेतन हुए बिना ही, लोग आग्रहपूर्वक यह चाहते हैं कि भगवान् हमारी धारणाओं के अनुरूप हों। क्योंकि, बिलकुल सहज रूप से, ज़रा भी विचार किये बिना, वे तुमसे कहते हैं: "ओह! यह चीज़ दिव्य है, यह चीज़ दिव्य नहीं है!" भला इस विषय में वे क्या जानते हैं? और फिर ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने भगवत्पथ पर अभी तक पाँव भी नहीं रखा है, जो यहाँ आते हैं और वस्तुओं और लोगों को देखते हैं और तुमसे कहते हैं: "इस आश्रम का भगवान् के साथ कोई नाता नहीं है, यह बिलकुल ही दिव्य नहीं है।" परन्तु उनसे यदि यह पूछा जाये कि: "आख़िर दिव्य है क्या?" तो इसका उत्तर देना उनके

लिए कठिन हो जायेगा; वे इस बारे में कुछ नहीं जानते। और लोग जितना कम जानते हैं उतना ही अधिक निर्णय देते हैं; यह एकदम पक्की बात है। जितना अधिक मनुष्य जानता है, वस्तुओं के विषय में अपने निर्णय की उतनी ही कम घोषणा करता है।

और एक ऐसा मुहूर्त आता है जब हम बस इतना ही कर सकते हैं कि देखते रहें; परन्तु उस समय निर्णय देना असम्भव हो जाता है। उस समय हम वस्तुओं को देख सकते हैं, और उसी तरह देख सकते हैं जैसी कि वे हैं—अपने पारस्परिक सम्बन्धों और अपने स्थान में जैसी हैं, और इस अभिज्ञता के साथ देखते हैं कि वे अभी जिस स्थान पर हैं उस स्थान और उन्हें जिस स्थान पर होना चाहिये उस स्थान के बीच क्या अन्तर है —क्योंकि बस यही संसार में सबसे बड़ी अव्यवस्था है—पर हम राय नहीं बनाते, केवल देखते हैं।

और एक मुहूर्त ऐसा आता है जब हम यह कहने में असमर्थ हो जाते हैं : "यह वस्तु दिव्य है और यह दिव्य नहीं है", क्योंकि एक ऐसा मुहूर्त आता है जब हम समूचे विश्व को इतने पूर्ण और व्यापक रूप में देखते हैं कि, सच पूछा जाये तो, उसकी प्रत्येक वस्तु को अस्तव्यस्त किये बिना उसमें से किसी वस्तु को निकाल लेना असम्भव होता है।

एक या दो पग और भी आगे बढ़ाने पर, पूरी निश्चयता के साथ, हम यह जान जाते हैं कि जो चीज़ें भगवान् के विपरीत होने के कारण हमें धक्का पहुँचाती हैं, वे बस वे ही चीज़ें हैं जो अपने स्थान पर नहीं हैं। प्रत्येक वस्तु ठीक-ठीक अपने ही स्थान पर होनी चाहिये और, साथ-ही-साथ, वह पर्याप्त नमनीय, पर्याप्त लचकदार होनी चाहिये ताकि सुसमञ्जस सतत प्रगतिशील संगठन के अन्दर वह उन सब नवीन तत्त्वों को प्रवेश करने दे जो अभिव्यक्त विश्व के साथ निरन्तर युक्त किये जा रहे हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २-३

दाम्भिकता और मन की संकुचितता

उदाहरणार्थ, एक स्त्री को लें, उसके बहुत से मित्र हैं जो उससे बहुत अधिक प्रेम करते हैं, क्योंकि उन्हें उसके अन्दर कुछ विशेष योग्यताएँ दीखती हैं। उसका सान्निध्य उन्हें सुखकर प्रतीत होता है, वे उससे हमेशा

सीख सकते हैं। तब अचानक, किन्हीं परिस्थितियों के वश, वह स्त्री समाज द्वारा बहिष्कृत कर दी जाती है, क्योंकि उसने अपना सम्बन्ध किसी दूसरे पुरुष के साथ स्थापित कर लिया है या बिना विवाह किये किसी दूसरे व्यक्ति के साथ रहने लगी है, दूसरे शब्दों में, उन सब सामाजिक कारणों के लिए जिनका स्वयं अपने-आपमें कोई मूल्य नहीं है, लोग उसे ठुकरा देते हैं। और उसके सब मित्र—यहाँ मैं उन मित्रों की बात नहीं कर रही जो उससे सचमुच प्रेम करते हैं—उसके सब सामाजिक मित्र जो उससे रास्ते में मिलने पर मुस्कान सहित उसका स्वागत करते थे, अभिवादन करते थे, अब अपनी गर्दन दूसरी ओर मोड़ लेते हैं और उसकी ओर बिना देखे आगे बढ़ जाते हैं—ऐसा यहाँ आश्रम में भी हो चुका है! मैं प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं देना चाहती, पर यहाँ ऐसा कितनी बार हुआ है: जब कभी प्रचलित सामाजिक नियम के विरुद्ध कुछ हुआ तो वही लोग जो इतना प्रेम दिखाते थे, इतनी सहानुभूति प्रकट करते थे, वही कभी-कभी कहते: "यह तो अब हाथ से गया!"

जब ऐसी बातें बाहर संसार में होती हैं तो मुझे बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होती हैं, किन्तु जब ये यहाँ होती हैं तो मुझे सदा एक धक्का-सा लगता है, यानी मैं अपने-आपसे कहती हूँ: "किन्तु ये अब भी इन सबसे ऊपर नहीं उठे!"

जो लोग समझते हैं कि उनके विचार उदार हैं और वे इन सब "सामाजिक प्रथाओं" से ऊपर हैं, वे भी सीधे, एकदम इस जाल में जा गिरते हैं। तब अपने अन्तःकरण को चुप कराने के लिए वे कहते हैं: "माताजी इसे स्वीकृति या अनुमति नहीं देतीं, न ही इसे सहन करती हैं!" इस प्रकार बाक़ी चीज़ों के साथ एक और मूर्खता जोड़ देते हैं।

इस अवस्था से बाहर निकलना बड़ा कठिन है। यही दाम्भिकता है! —सामाजिक प्रतिष्ठा की यह भावना! किन्तु है यह मन की संकुचितता, क्योंकि, जिन लोगों में ज़रा भी बुद्धि होती है वे इस फन्दे में नहीं फँसते। उदाहरणार्थ, जो लोग संसार-भर में घूम-फिर आये हैं उन्होंने देखा है कि ये सब सामाजिक नियम पूर्णतया जलवायु, जाति और आदतों पर निर्भर करते हैं, इससे भी अधिक समय और युग पर। वे ऐसी बातों की ओर देख कर मुस्कुरा सकते हैं। किन्तु ये ठीक सोचने वाले लोग, ओह!...

यह प्रारम्भिक पग है। जब तक तुम ऐसी अवस्था से बाहर नहीं निकल आते तब तक तुम योग के योग्य नहीं हो। यदि तुम इस अवस्था में हो तो सचमुच तुम योग के लिए उपयुक्त नहीं हो—यह प्रारम्भिक अवस्था है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ८९-९०

व्यक्ति सामान्य जीवन जिये, फिर भी मुक्त रहे

किन्तु सामान्य अवस्थाओं में व्यक्ति को जो कुछ बनना चाहिये वैसा बनने का ढंग कैसे जाना जाये?

व्यक्ति एक या दूसरी अति में न गिरे इसका क्या उपाय है?

जी, वह सामान्य जीवन व्यतीत करे और फिर भी मुक्त रहे।

मेरे बच्चे, इसीलिए तो आश्रम बनाया गया था! इसके पीछे यही विचार था। कारण, जब मैं फ़्रांस में थी मैं सदा अपने-आपसे यही प्रश्न पूछा करती थी: "अपने-आपको पाने के लिए व्यक्ति को समय कैसे मिल सकता है? अपने-आपको मुक्त करने के उपाय को समझने के लिए भी व्यक्ति को समय कैसे मिले?" तब मैंने सोचा: एक ऐसा स्थान होना चाहिये जहाँ सब भौतिक आवश्यकताएँ पर्याप्त मात्रा में पूरी हो जायें, ताकि यदि कोई सचमुच अपने-आपको मुक्त करना चाहे तो मुक्त हो सके। और इसी विचार को आधार मान कर—किसी और विचार को नहीं—आश्रम की स्थापना हुई थी—ऐसा स्थान, जहाँ लोगों को जीवन की सभी आवश्यकताएँ उपलब्ध हों ताकि उनके पास 'सच्ची वस्तु' के विषय में सोचने के लिए समय रहे।

(माताजी मुस्कुराती हैं) मानव प्रकृति ही ऐसी है कि अभीप्सा का स्थान आलस्य ने ले लिया है—सबके लिए यद्यपि यह सत्य नहीं है, पर कुल मिला कर सामान्य स्थिति ऐसी ही है—और स्वतन्त्रता का स्थान उच्छृंखलता ने या स्वेच्छाचारिता ने ले लिया है। यह इस बात को प्रमाणित करने के बराबर है कि मनुष्यजाति को अधिक सच्चाई के साथ दासता से कर्मठता में आने के लिए तैयार होने से पहले क्रूरतापूर्ण व्यवहार में से गुज़रना पड़ेगा।

पहली क्रिया बिलकुल इस प्रकार की है: "आख़िर एक ऐसा स्थान ढूँढ़ना चाहिये जहाँ व्यक्ति एकाग्र हो सके, अपने-आपको पा सके, भौतिक

वस्तुओं में व्यस्त हुए बिना सच्चे रूप में जी सके"। यह पहली अभीप्सा है। इसी आधार पर—कम-से-कम शुरू में—साधकों का चुनाव हुआ था —किन्तु यह चीज़ बहुत दिन नहीं चलती! वस्तुस्थिति बाद में सरल हो जाती है और व्यक्ति बहक जाता है। क्योंकि यहाँ कोई नैतिक बन्धन नहीं हैं, इसलिए मूर्खतापूर्ण कार्य किये जाते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २३२-३३

नवागन्तुकों को परामर्श

भावी शिक्षकों और भावी विद्यार्थियों ने आना आरम्भ कर दिया है। कुछ लोग विदेशों से भी आये हैं जिनके लिए इस देश का जलवायु तथा रीति-रिवाज सब कुछ नया है। ये आश्रम में पहली बार आये हैं और इसके जीवन और रहन-सहन से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। कुछ तो सेवा करने या सीखने की मानसिक अभीप्सा से प्रेरित होकर आये हैं; कुछ योग करने, भगवान् को पाने तथा उनसे युक्त होने की आशा लेकर आये हैं। अन्त में, कुछ ऐसे भी हैं जो अपने-आपको पूर्ण रूप से पृथ्वी पर भागवत कार्य के लिए समर्पित कर देने के इच्छुक हैं। सभी अपने चैत्य पुरुष से प्रेरित होकर आते हैं जिसका उद्देश्य उन्हें आत्म-उपलब्धि की ओर ले जाना है। तब उनका चैत्य पुरुष सम्मुख होता है और चेतना को शासित करता है; व्यक्तियों और वस्तुओं से उनका सम्बन्ध चैत्य द्वारा ही होता है। उन्हें सब कुछ अच्छा और सुन्दर लगता है, उनका स्वास्थ्य सुधर जाता है, चेतना निर्मल हो जाती है और वे प्रसन्न, शान्त और सुरक्षित अनुभव करते हैं; उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी चेतना की उच्चतम सम्भावना पा ली है। स्वाभाविक है कि चैत्य सम्पर्क द्वारा प्राप्त इस शान्ति, परिपूर्णता और प्रसन्नता को वे प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति में देखते हैं। यह सम्बन्ध उन्हें उस सच्ची चेतना के प्रति ग्रहणशील बना देता है जो यहाँ व्याप्त है और सभी कार्य सम्पन्न कर रही है। जब तक यह ग्रहणशीलता बनी रहती है, शान्ति, परिपूर्णता और प्रसन्नता भी रहती है, साथ ही विकास के तात्कालिक फल भी दिखायी देने लगते हैं—उनका शरीर ठीक और स्वस्थ हो जाता है, प्राण में शान्ति और सदिच्छा का और मन में सुस्पष्ट बोध और व्यापकता का निवास रहता है तथा स्वभावतया

ही उनमें सन्तोष और सुरक्षा की भावना बनी रहती है। पर मनुष्य के लिए अपने चैत्य पुरुष के साथ सतत सम्बन्ध बनाये रखना कठिन है। जैसे ही कोई नवागन्तुक यहाँ स्थायी रूप में बस जाता है और उसके अनुभव की ताज़गी मन्द पड़ जाती है, पुराना व्यक्तित्व पुनः अपनी सब आदतों, रुचियों, छोटी-मोटी सनकों, दुर्बलताओं तथा ग़लतफ़हमियों के साथ ऊपर आ जाता है; शान्ति का स्थान अशान्ति ले लेती है, प्रसन्नता लुप्त हो जाती है, बुद्धि विमूढ़ हो जाती है और यह भाव भी दबे पाँव घुसने लगता है कि यह स्थान भी वैसा ही है जैसे अन्य स्थान हैं; कारण, अब वह स्वयं वैसा बन गया है जैसा वह और जगह था। जो कुछ किया जा चुका है उसकी ओर देखने के स्थान पर वह अब अधिकाधिक और प्रायः उसी की ओर देखने लगता है जो अभी किया जाना है; वह उदास और असन्तुष्ट हो उठता है, अपने-आपको दोषी मानने के स्थान पर अन्य व्यक्तियों और वस्तुओं को दोषी ठहराने लगता है। वह शिकायत करने लगता है कि यहाँ सुख-सुविधा का अभाव है, जलवायु अनुकूल नहीं है, भोजन अनुपयुक्त है जिससे उसका पाचन बिगड़ जाता है, आदि-आदि। श्रीअरविन्द की इस शिक्षा का आश्रय लेकर कि शरीर योग का एक अनिवार्य आधार है तथा इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, बल्कि इसके विपरीत इसका ख़ूब ध्यान रखना चाहिये, उसकी भौतिक चेतना अपने-आपको पूर्ण रूप से इसी पर एकाग्र करने लगती है और इसे सन्तुष्ट करने के साधन ढूँढ़ने में लग जाती है जो व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं है। शायद कुछ अपवादों को छोड़ कर ही, जितना इसे दिया जाता है इसकी माँगें उतनी ही बढ़ती रहती हैं। इसके अतिरिक्त, भौतिक सत्ता अज्ञानमयी और अन्धी है; वह मिथ्या धारणाओं, पूर्व-कल्पित विचारों, पक्षपातों और अभिरुचियों से परिपूर्ण है। अपने-आप वह शरीर के साथ उपयुक्त व्यवहार करने में सफल नहीं हो सकती। यह तो केवल अन्तरात्मा की चेतना है जिसके पास उचित चीज़ उचित तरीक़े से करने के लिए आवश्यक ज्ञान और अन्तर्दृष्टि होती है।

तुम पूछोगे कि इस अवस्था का इलाज क्या है? यहाँ हम कुचक्र में घूम रहे हैं, क्योंकि सारा कष्ट चैत्य पुरुष से सम्बन्ध-विच्छेद होने पर पैदा होता है और केवल चैत्य पुरुष ही इन समस्याओं का हल ढूँढ़ सकता है। अतएव, इलाज एक ही है : सावधान रहो, चैत्य पुरुष को दृढ़ता से पकड़े

रहो, अपनी चेतना में किसी भी चीज़ को अपने और उसके बीच में न आने दो, अपनी समझ और कान बन्द कर लो, अन्य किसी भी सुझाव को मत सुनो, अपना विश्वास केवल उसी में रखो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ४१-४३

लीक-लीक चलने का भला क्या फ़ायदा!

यदि सर्वत्र एक जैसी ही चीज़ें की जाती हैं, हमें उन्हें दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है, हम दूसरों की अपेक्षा अधिक अच्छे रूप में उन्हें नहीं कर सकेंगे।

और जब वे मेरे सामने इस तर्क को उपस्थित करते हैं, वे ऐसी कोई बात मुझसे नहीं कह सकते जो मुझे पूरी तरह से मूर्खतापूर्ण न प्रतीत हो। यह सर्वत्र किया जाता है? बस, यही इसे न करने का कारण है; क्योंकि हम यदि वही करें जो दूसरे करते हैं तो कुछ भी करने का कष्ट उठाने से क्या लाभ? हम तो वास्तव में संसार के अन्दर कोई ऐसी चीज़ समाविष्ट करना चाहते हैं जो वहाँ नहीं है; पर हम यदि संसार की सभी आदतों, संसार की सभी अभिरुचियों, संसार की सभी संरचनाओं को बनाये रखें तो मैं नहीं समझती कि हम पुरानी लीक को छोड़ कर कैसे बाहर निकल सकते हैं और कोई नवीन चीज़ कर सकते हैं।

मेरे बच्चो! मैं तुमसे कह चुकी हूँ, हर स्वर में, हर ढंग से इसे दोहरा चुकी हूँ : यदि तुम वास्तव में यहाँ रहने का लाभ उठाना चाहते हो तो एक ऐसी नयी दृष्टि से और एक ऐसी नयी समझ से वस्तुओं को देखने और उन्हें समझने का प्रयत्न करो जो किसी उच्चतर वस्तु पर, किसी गभीरतर, विशालतर वस्तु पर, किसी सत्यतर वस्तु पर, किसी ऐसी वस्तु पर आधारित हों जो अभी यहाँ नहीं हैं पर एक दिन होंगी। और चूँकि हम इस भविष्य को निर्मित करना चाहते हैं, इसीलिए हमने यह विशेष स्थिति अपनायी है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २९०

पहले और वर्तमान के दर्शन-दिवस

उन दिनों जब श्रीअरविन्द दर्शन दिया करते थे, दर्शन देने से पहले, सर्वदा ही कुछ शक्तियों की या उस विशिष्ट अनुभूति की एकाग्रता होती

थी जिसे वे लोगों को देना चाहते थे। और इसलिए प्रत्येक दर्शन एक पग आगे बढ़ना होता था; हर बार कोई चीज़ जोड़ी जाती थी। परन्तु यह उस समय होता था जब कि दर्शनार्थियों की संख्या बहुत सीमित होती थी। यह सब दूसरे ढंग से व्यवस्थित होता था, और यह आवश्यक तैयारी का एक अंग था।

परन्तु यह विशेष एकाग्रता, अब, अन्य समयों पर होती है, केवल दर्शन-दिनों पर नहीं। और यह दूसरे अवसरों पर, अन्य परिस्थितियों में पहले से कहीं अधिक होती है। यह क्रिया बहुत अधिक तेज़ हो गयी है, गति बढ़ गयी है; अवस्थाएँ एक के बाद एक बहुत तीव्रता से आती हैं। और सम्भवतः उनका अनुसरण करना अधिक कठिन हो गया है; बहरहाल यदि कोई अनुसरण करने की परवाह नहीं करता तो वह पहले की अपेक्षा अधिक तेज़ी से पीछे छूट जाता है; उसे लगता है कि उसे देर हो गयी है अथवा वह छोड़ दिया गया है। सारी चीज़ें शीघ्रता के साथ बदलती हैं।

और मुझे कहना ही होगा कि इन दर्शन-दिवसों का, लोगों की इस सब भीड़ के रहते आन्तरिक प्रगति की दृष्टि से उतना अधिक लाभ नहीं होता—अर्थात् आश्रम के अन्दर—जितना कि बाहर की ओर फैलाव के लिए होता है। इन दिवसों की उपयोगिता कुछ भिन्न प्रकार की है; यह उपयोगिता, सर्वोपरि, आगे बढ़ने के लिए, एक विशालतर क्षेत्र अधिगत करने तथा अधिक सुदूर बिन्दुओं तक पहुँचने के लिए है। परन्तु एकाग्रता कम होती है और एक बड़ी भीड़ की यह असुविधा होती है, जो थी तो हमेशा से ही, पर जो इन विगत वर्षों में प्रारम्भ के दिनों की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गयी है। प्रारम्भ में ऐसी भीड़ नहीं होती थी; और सम्भवतः भीड़ भी थोड़ी भिन्न प्रकार की होती थी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३१७

जो माताजी के प्रति खुले हैं, अपनी आन्तरिक सत्ता में उनके निकट हैं, उनकी इच्छा के साथ एक हैं, वे ही हैं माँ के बालक और उनके निकटतम —वे नहीं जो भौतिक रूप से उनके समीप रहते हैं।

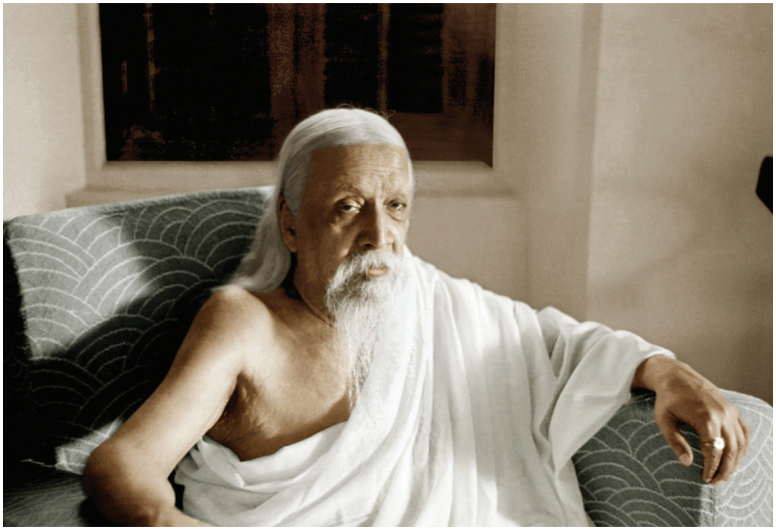

दूर रह कर सहायता ग्रहण करना

अगर वह दूर से सहायता ग्रहण नहीं कर सकता तो यहाँ रह कर योग जारी रखने की आशा कैसे कर सकता है? यह ऐसा योग है जो मौखिक निर्देशों या किसी बाहरी चीज़ पर नहीं बल्कि निर्भर करता है पूर्ण नीरवता में स्वयं को उद्‌घाटित करने और शक्ति तथा प्रभाव को ग्रहण करने पर। जो लोग दूर रह कर इसे ग्रहण नहीं कर सकते वे यहाँ भी उसे प्राप्त नहीं कर सकते। साथ ही, अपने अन्दर निश्चलता, निष्कपटता, नीरवता, धीरज तथा लगन को प्रतिष्ठापित किये बिना यह योग नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना होता है और उन पर पूरी तरह से और निश्चित रूप से विजय पाने में कई-कई वर्ष लग जाते हैं।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५९७

बृहद् आन्तरिक आश्रम

विज्ञानमय समाज गढ़ने की शर्तें

एक लम्बे अरसे तक आश्रम व्यक्तियों का केवल एक जमघट था, प्रत्येक व्यक्ति किसी चीज़ का प्रतिनिधित्व करता था, पर एक व्यष्टि के तौर पर ही, उनमें कोई सामूहिक संगठन नहीं था। यह शतरंज-पटल पर रखे पृथक्-पृथक् प्यादों की तरह था—उनमें केवल ऊपर से दीखने वाली एकता थी—या यूँ कहें कि यह एक ऊपरी तथ्य था कि लोग एक स्थान पर एक साथ रहते थे और उनमें कुछ आदतें समान थीं—वे भी बहुत नहीं, बस कुछ एक ही। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार विकास करता था—या नहीं करता था—और दूसरों के साथ उसका सम्बन्ध कम-से-कम था। इस प्रकार, इस विचित्र समूह का गठन करने वाले व्यक्तियों के मूल्य के अनुरूप यह कहा जा सकता था कि एक सामान्य मूल्य था, वह भी बहुत अस्पष्ट और उसमें कोई सामूहिक संगठन जैसा कुछ नहीं था। यह स्थिति बहुत लम्बे—बहुत ही लम्बे समय तक बनी रही। और यह तो केवल अभी हाल ही में एक सामूहिक संगठन की आवश्यकता अनुभव होनी शुरू हुई—यह ज़रूरी नहीं है कि यह आश्रम तक ही सीमित हो, बल्कि उन सबको भी अपने अन्दर समाविष्ट किये हुए है जो अपने-आपको श्रीअरविन्द का शिष्य कहते हैं—मेरा मतलब है, भौतिक रूप से नहीं, बल्कि अपनी चेतना में—और उनकी शिक्षा के अनुसार जीवन बिताने का प्रयत्न करते हैं। उन सबमें एक ऐसे सच्चे संघ के जीवन की आवश्यकता जाग्रत् हो गयी है जो पूर्णतया भौतिक परिस्थितियों पर ही आधारित न हो बल्कि एक गहनतर सत्य का प्रतिनिधित्व करता हो, और जब से अतिमानसिक चेतना और शक्ति का अवतरण हुआ है तब से यह और भी प्रबल हो उठी है। यह एक ऐसे समाज का आरम्भ है जिसे श्रीअरविन्द ने अतिमानसिक या विज्ञानमय समाज कहा है...। निश्चय ही, उन्होंने यह कहा है कि इसके लिए समुदाय के व्यक्तियों के अपने अन्दर भी अतिमानसिक चेतना होनी चाहिये; परन्तु इस व्यक्तिगत पूर्णता तक पहुँचे बिना—बल्कि इस पूर्णता से बहुत दूर रहते हुए भी—जिसे हम "सामूहिक व्यक्तित्व" कह सकते हैं उसके निर्माण के लिए एक आन्तरिक प्रयत्न भी साथ-साथ चलता रहा है।

सच्ची एकता की, एक गहनतर सम्बन्ध की आवश्यकता अनुभव होती रही है और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता रहा है।

इससे कुछ... कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं, क्योंकि पहले की प्रवृत्ति इतनी अधिक वैयक्तिक थी कि कुछ आदतों में ख़लल पड़ा, मेरा मतलब यह नहीं है कि भौतिक रूप में पड़ा, क्योंकि चीज़ें उससे बहुत भिन्न नहीं हैं जैसी पहले थीं, ख़लल कुछ गहरी चेतना में पड़ा। और **सबसे बढ़ कर यह**—इसी बात पर मैं ज़ोर देना चाहती हूँ—कि इसने कुछ हद तक एक आन्तरिक परस्पर-निर्भरता पैदा कर दी है जिसने, स्वभावतः ही, वैयक्तिक स्तर को—ज़रा—गिरा दिया है, सिवाय उन लोगों के जिन्होंने, हम कह सकते हैं, पहले ही "समान स्तर" करने की प्रवृत्ति का मुक़ाबला करने-लायक पर्याप्त सक्षम आन्तरिक सिद्धि पा ली है। इसी से ऐसा लगता है कि सामान्य स्तर नीचे गिर गया है, पर यह बात ठीक नहीं है। सामान्य स्तर पहले से अधिक ऊँचा है, परन्तु वैयक्तिक स्तर कइयों में नीचे आ गया है, वे लोग भी, जो किसी एक या दूसरी उपलब्धि के योग्य थे, ऐसा अनुभव करने लगे हैं मानों उन पर एक भार आ पड़ा है, जो उन्हें पहले नहीं ढोना पड़ता था, वे नहीं जानते कि ऐसा क्यों हुआ, यह भार परस्पर-निर्भरता का परिणाम है। पर यह केवल एक अस्थायी प्रभाव है जो उलटे, सुधार की ओर, एक बहुत स्पष्ट सामान्य प्रगति की ओर ले जायेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १९२-९३

संसार में योग करना कठिन है पर अधिक पूर्ण भी है

... मनुष्य को ख़ूब सावधान रहना चाहिये कि वह एक पग एक ओर और दूसरा दूसरी ओर न रखे, एक ही साथ दो नावों पर नहीं चढ़ना चाहिये जो दोनों अपने-अपने पथ पर जा रही हों। बस, यही बात श्रीअरविन्द ने कही थी: मनुष्य को "दोहरे जीवन" का अनुसरण नहीं करना चाहिये। उसे एक या दूसरी चीज़ का अवश्य त्याग कर देना चाहिये—मनुष्य दोनों का अनुसरण नहीं कर सकता।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपने जीवन की परिस्थितियों से बाहर निकलने के लिए बाध्य हैं: सच पूछा जाये तो आन्तरिक मनोभाव को पूर्णतः परिवर्तित हो जाना चाहिये। हमें जो कुछ करने का अभ्यास है

उसे हम कर तो सकते हैं, परन्तु करना होगा एक बिलकुल भिन्न मनोभाव के साथ। मैं नहीं कहती कि योग करने के लिए जीवन की सभी चीज़ों को छोड़ देना और एकान्त में किसी आश्रम में चले जाना ज़रूरी है। अभी, यह सच है कि यदि कोई संसार में और सांसारिक परिस्थितियों में योग करे तो यह अधिक कठिन है, पर यह अधिक पूर्ण भी है। कारण, प्रत्येक क्षण उसके सामने ऐसी समस्याएँ उपस्थित होंगी जो उस व्यक्ति के सामने नहीं उपस्थित होतीं जो सब कुछ छोड़ कर एकान्त में चला गया है; उस तरह के मनुष्य के लिए ये समस्याएँ घट कर अत्यल्प हो जाती हैं—जब कि जीवन में मनुष्य के सामने सभी प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं जिनका प्रारम्भ उन लोगों के अज्ञान से ही हो जाता है जो उसके चारों ओर होते हैं और जिनके साथ उसे व्यवहार करना पड़ता है; उसे इसके लिए तैयार रहना होगा, बहुत धैर्य और बड़े उदासीन भाव से लैस रहना होगा। परन्तु योग में मनुष्य को कभी इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिये कि लोग क्या सोचते या कहते हैं; यह एक पूर्णतः अनिवार्य प्रारम्भ-बिन्दु है। संसार जो कुछ तुम्हारे विषय में कहता या सोचता है और जिस ढंग से वह तुम्हारे साथ व्यवहार करता है उस सबसे तुम्हें पूर्ण रूप से अछूता रहना चाहिये। लोगों की समझ ऐसी चीज़ होनी चाहिये जो तुम्हारे लिए बिलकुल निस्सार है और जिससे तुम्हें ज़रा भी स्पृष्ट नहीं होना चाहिये। यही कारण है कि साधारण तौर पर सब कुछ छोड़ कर एकान्त में चले जाने की अपेक्षा अपने पुराने परिवेश में बने रहना और योग करना बहुत अधिक कठिन होता है; यह बहुत अधिक कठिन होता है, पर हम यहाँ आसान काम करने के लिए नहीं हैं—आसान काम तो हम उन लोगों के लिए छोड़ रहे हैं जो रूपान्तर की कोई बात ही नहीं सोचते।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४५२-५३

आध्यात्मिक जीवन की तैयारी के लिए उत्तम तरीक़ा

जब व्यक्ति को सामान्य व्यवसायों तथा परिवेशों में रहना पड़ता है तब स्वयं को आध्यात्मिक जीवन के लिए तैयार करने का उत्तम तरीक़ा है, पूर्ण समानता तथा अनासक्ति रखना और *गीता* में कही गयी समता को यह विश्वास रखते हुए विकसित करते रहना कि भगवान् उपस्थित हैं

और यह कि भले आज जगत् अन्धकार से घिरा हुआ है, लेकिन फिर भी सभी चीज़ों में 'भागवत परम संकल्प' निरन्तर क्रियारत है। इस अज्ञान के परे स्थित हैं 'प्रकाश' तथा 'आनन्द' जिनकी ओर जीवन गति कर रहा है, लेकिन उनके आविर्भाव तथा हर एक व्यक्ति की सत्ता तथा स्वभाव में इनकी नींव डालने के लिए उत्तम विधि है कि प्रत्येक इस आध्यात्मिक समता में निरन्तर विकसित होता रहे। इस दृष्टि को अपना लो और असुखकर तथा अप्रिय चीज़ों के बारे में यह दृष्टिकोण तुम्हारी कठिनाई सुलझा देगा। समस्त मनोमालिन्य का सामना समता के साथ करना चाहिये।

जब तुम जगत् में रहते हो, तुम आश्रम की तरह नहीं रह सकते—तुम्हें दूसरों के साथ मेल-जोल रखना पड़ता है और बाह्य रूप से, कम-से-कम सामान्य सम्बन्ध तो बनाये ही रखना पड़ता है। महत्त्वपूर्ण चीज़ है, आन्तरिक चेतना को भगवान् के प्रति खुला रखना और उसमें विकसित होना। तुम जैसे-जैसे यह करोगे, देर-सबेर—तुम्हारी साधना की आन्तरिक तीव्रता के अनुसार—दूसरों के प्रति तुम्हारा मनोभाव बदलता जायेगा। तुम सभी को अधिकाधिक भगवान् में देखोगे और तुम्हारी भावनाएँ, तुम्हारी क्रियाएँ इत्यादि पुरानी बाहरी प्रतिक्रियाओं द्वारा नहीं, बल्कि तुम्हारे अन्दर विकसित होती हुई चेतना के द्वारा अधिकाधिक निर्धारित होती जायेंगी।

सांसारिक जीवन संघर्ष का जीवन है—इस पर उचित तरीक़े से चलने के लिए तुम्हें अपना जीवन तथा अपनी क्रियाएँ भगवान् को समर्पित करनी चाहियें और अपने अन्दर भगवान् की शान्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिये। मन जब अचञ्चल हो जाता है, तब तुम यह अनुभव कर सकते हो कि दिव्य माँ तुम्हारे जीवन को सहारा दिये हुए हैं, और तब तुम सब कुछ उनके हाथों में सौंप दो।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ३४४-४५

केन्द्रीय बिन्दु आश्रम ही है

निश्चय ही मेरी शक्ति आश्रम तक ही सीमित नहीं है। जैसा कि तुम जानते हो कि उचित विकास के लिए और संसार में परिवर्तन लाने के

लिए भरपूर मात्रा में इसका उपयोग होता है। आश्रम से बाहर के क्षेत्र तथा योगाभ्यास के वैयक्तिक उद्देश्यों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है; लेकिन वह सब निश्चिततः चुपचाप तथा मुख्यतः आध्यात्मिक क्रिया के द्वारा किया जाता है। बहरहाल, कार्य का केन्द्रीय बिन्दु आश्रम ही बना रहता है और योगाभ्यास के बिना न यहाँ के कार्य का अस्तित्व होगा, न ही कोई अर्थ। लेकिन स्वयं योग में, विभिन्न प्रकृतिवालों के लिए योगाभ्यास के विविध मार्ग होते हैं, यद्यपि सामान्य पथ—भगवान् के प्रति समर्पित होना तथा अपनी प्रकृति को बदलना—एकसमान ही रहता है। साथ ही, यह भी सच है कि अपने सम्पूर्ण अर्थ में—थोड़े ही समय में भगवान् के प्रति समर्पित होना या अपनी प्रकृति को बदलना—सम्भव नहीं होता। वस्तुतः, व्यक्ति को जितनी तेज़ी से हो, आगे बढ़ते रहना चाहिये और जितना आवश्यक हो, उतनी धीरे-धीरे चलना चाहिये—बात एकदम से विरोधाभासी प्रतीत होती है, लेकिन सचमुच है नहीं।

तुम उससे कह सकते हो कि यद्यपि पढ़ना और अध्ययन करना मन को तैयार करने के लिए चाहे जितना भी लाभप्रद हो, अपने-आपमें योग में प्रवेश करने के लिए उत्तम माध्यम नहीं है। सच्चा साधन है, आन्तरिक आत्म-समर्पण। न ही, मात्र आश्रम के वातावरण में रहना ही आवश्यक है... उससे कहो कि सचमुच आवश्यक है श्रीमाँ की चेतना के साथ एकात्म होना, और उसके लिए ज़रूरी है, मन, हृदय तथा संकल्प का सच्चा तथा निष्कपट समर्पण। श्रीमाँ के द्वारा दिया गया कार्य हमेशा उस आत्म-समर्पण के लिए एक क्षेत्र होता है, कार्य उनके प्रति निवेदन के रूप में किया जाना चाहिये ताकि व्यक्ति उनकी 'शक्ति' को क्रिया करते हुए और उनकी उपस्थिति को अनुभव कर सके।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ४९६, ५४७-४८

मैं श्रीमाँ के समीप रहना चाहता हूँ। अगर मैं उनके क़रीब रहूँ तो विरोधी शक्तियाँ मुझ पर आक्रमण नहीं कर पायेंगी।

तुम्हारी बात ग़लत है। जो भौतिक रूप से माँ के निकट हैं उनमें से कई

ऐसे हैं जिन्होंने, तुमने जितने प्रहार सहे हैं उनसे कहीं ज़्यादा बदतर प्रहार सहे हैं। आन्तरिक निकटता रक्षा करती है, भौतिक सामीप्य नहीं।

आन्तरिक समीपता का महत्त्व होता है। मन का यह विचार—निस्सन्देह, यह बहुत स्वाभाविक भी है—कि बाहरी निकटता किसी विशेष सम्बन्ध, कृपादृष्टि या तेज़ प्रगति का चिह्न है, लेकिन अनुभव यह नहीं बतलाता। कुछ हैं जो माँ के रोज़ाना दर्शन करते हैं, उनसे मिलते हैं, लेकिन बरसों पहले जैसे थे उससे तिल भर ही प्रगति कर पाये—ऐसे भी थे जो पहले से बदतर बन गये क्योंकि इस चीज़ ने उनकी प्राणिक माँगों को पुष्ट किया —दूसरी तरफ़, कई ऐसे हैं जो श्रीमाँ के बहुत क़रीब हैं, पथ पर बहुत आगे बढ़ गये हैं, माँ की आँखों का तारा हैं, लेकिन वे मिलते हैं माँ से कभी-कदास ही। और मैं एक ऐसा उदाहरण दे सकता हूँ जहाँ वह व्यक्ति साल में केवल एक बार श्रीमाँ के पास आता था, फिर भी, जितनी तेज़ी से उसने प्रगति की, और किसी ने नहीं की, और उसके अन्दर श्रीमाँ के प्रति तीव्र और उत्साह से भरा इतना प्रेम था जितना और किसी में नहीं था। इन सभी चीज़ों में सबसे अच्छा यही है कि तुम माँ पर और उनके मार्गदर्शक प्रकाश पर पूरा-पक्का भरोसा रखो।
CWSA खण्ड ३५, पृ. ४९४

अगर तुम्हारा निकट का आन्तरिक सम्बन्ध है तो तुम हमेशा श्रीमाँ को अपने समीप, अपने अन्दर और अपने चारों ओर पाओगे; हम इस पर आग्रह नहीं करते कि भौतिक सामीप्य ज़रूरी है। जो भौतिक रूप से श्रीमाँ के पास नहीं हो सकते, वे उसके लिए अभीप्सा तो करें, लेकिन उसे पाने के लिए ज़मीन-आसमान एक करने की कोशिश न करें। अगर उन्हें बाहरी निकटता भी मिल जाये, वे देखेंगे कि आन्तरिक एकात्मता तथा समीपता के बिना बाहरी सामीप्य का एकदम से कोई मूल्य नहीं है। तुम भौतिक रूप से माँ के क़रीब रहते हुए भी सहारा रेगिस्तान के जितने दूर हो सकते हो।

एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज़ है, आन्तरिक मनोभाव रखना और सभी बाहरी परिस्थितियों से स्वतन्त्र रह कर, माँ के साथ आन्तरिक सम्बन्ध को

दृढ़तापूर्वक बनाये रखना; यही है वह सम्बन्ध जो सभी आवश्यक चीज़ों को ले आयेगा। जो लोग योग में बहुत गहरे उतर गये हैं वे वे नहीं है जिन्हें श्रीमाँ के दर्शन के सबसे अधिक सुअवसर मिलते हैं। कुछ ऐसे हैं जो सतत उनके निकट या उनके साथ तादात्म्य में रहते हैं, जो प्रणाम तथा साँझ के सामूहिक ध्यान के अलावा बस उनसे साल में एक ही बार मिलते हैं। CWSA खण्ड ३२, पृ. ४९५, ४९६

आन्तरिक सम्पर्क प्राप्त करना सीखो

श्रीमाँ के निवृत्त[१] हो जाने से हमारे लिए एक बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गयी। माताजी और बहुत-से आश्रमवासियों के बीच पहले से ही जो भौतिक दूरी थी क्या वह अब बढ़ने वाली है? और क्या उनकी सतत निगरानी के बिना आश्रम के काम-धाम चल सकते हैं? क्या उनके इस तरह से निवृत्त होने के समय आश्रमवासियों के हितों को नुकसान न पहुँचेगा? क्या वे पहले की तरह अब भी हमारी देखभाल करेंगी?

तुम्हें यह न भूलना चाहिये कि हर एक को जीवन में वही मिलता है जो उसके अपने अस्तित्व की अभिव्यक्ति हो। 'कृपा' और आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं। जो मेरी शक्ति पर निर्भर हैं, सदा की तरह उनकी देखभाल मैंने एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ी।

काम करो—मेरी प्रेरणा और मेरा पथ-प्रदर्शन हमेशा तुम्हारे साथ होंगे; और जब ज़रूरी होगा मैं तुमसे भौतिक रूप से भी मिलूँगी। लेकिन मैं इस आवश्यकता को अधिकाधिक कम करने के लिए काम कर रही हूँ। क्योंकि कार्य की पूर्णता के लिए आन्तरिक पथ-प्रदर्शन को पाने के योग्य होना अनिवार्य है।

१. २० मार्च १९६२ से श्रीमाँ ने अपने कमरे से नीचे आना बन्द कर दिया था और उनसे मिलने-जुलने की पहले जैसी छूट न रही थी; कुछ समय बाद उन्होंने लोगों से मिलना शुरू किया किन्तु समयादेश देकर।

अब जब तुम यहाँ हो तो बस यही करो कि अपने भूतकाल को भूल जाओ और अपने यहाँ के काम पर एकाग्र होओ। यह सच है कि अभी के लिए मैं तुमसे नियमित रूप से नहीं मिल सकती, लेकिन तुम्हें **आन्तरिक** सम्पर्क प्राप्त करना सीखना चाहिये (मेरे निवृत्त होने के मुख्य कारणों में से एक यह है) और तब तुम जानोगे कि मैं हमेशा तुम्हें राह दिखाने और तुम्हारी मदद करने के लिए तुम्हारे साथ हूँ और तुम अपनी साधना करने के लिए यहाँ से अच्छी परिस्थितियाँ कहीं नहीं पा सकते।

यह कहना ज़्यादा सही होगा कि अमुक विचार, अमुक भावनाएँ और अमुक कार्य लोगों को मुझसे दूर ले जाते हैं या समस्त भौतिक सामीप्य के होते हुए भी मेरे और व्यक्ति के बीच अलगाव पैदा कर देते हैं।

क्या आपके साथ भौतिक सम्पर्क अनिवार्य है?

नहीं, यह भौतिक सम्पर्क अनिवार्य नहीं है। यह निश्चित है कि जिनका मनोभाव ठीक होता है, उनके शरीर को भौतिक सम्पर्क रूपान्तर की गति का अनुसरण करने में सहायता देता है, लेकिन शरीर कदाचित् ही ऐसी अवस्था में होता है कि उससे लाभ उठा सके। साधारणतः जन्मदिनों पर वह ज़्यादा ग्रहणशील होता है।

अब मैं सक्रिय जीवन में नहीं हूँ; अगर तुम खुले हो तो सहायता अवश्य ही आयेगी।

मैं तुम सबमें द्वार खोलने के लिए पूरा ध्यान देती हूँ, ताकि अगर तुम्हारे अन्दर एकाग्रता का ज़रा-सा भी स्पन्दन हो, तो तुम्हें ऐसे बन्द दरवाज़े के सामने बहुत-बहुत देर तक न ठहरना पड़े जो हिलता तक नहीं, जिसकी चाबी तुम्हारे पास नहीं है और जिसे तुम खोलना नहीं जानते।

दरवाज़ा खुला हुआ है, तुम्हें उस दिशा में देखना-भर होगा। तुम्हें उसकी ओर पीठ नहीं फेरनी चाहिये।

मैं किसी का गुरु होने के लिए उत्सुक नहीं हूँ। मेरे लिए सबकी माँ

होने का और उन्हें चुपचाप प्रेम की शक्ति द्वारा आगे ले जाने का अनुभव ज़्यादा सहज और स्वाभाविक है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ८१-८३, ८५-८६

चैत्य सम्पर्क को दूर से भी बनाये रखा जा सकता है

निश्चित रूप से यह बात साढ़े सोलह आने सच है कि चैत्य सम्पर्क को दूर से भी बनाये रखा जा सकता है और यह भी कि भगवान् किसी स्थान-विशेष से बँधे हुए नहीं हैं, वे सर्वत्र हैं। यह आवश्यक नहीं है—विशेष रूप से योग की प्रारम्भिक अवस्थाओं में—कि आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए या इस योग का अभ्यास करने के लिए **हर एक** पॉण्डिचेरी में या भौतिक रूप से श्रीमाँ के निकट ही रहे। लेकिन यह सत्य का केवल एक पहलू है, एक और भी है। क्योंकि तब यह तार्किक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि फिर तो श्रीमाँ के यहाँ रहने या आश्रम के अस्तित्व का या यहाँ पर किसी के भी आने की क्या आवश्यकता है भला?

सभी के अन्दर चैत्य सत्ता होती है, लेकिन बहुत ही कम ऐसे हैं जिनमें वह भली-भाँति विकसित, चेतना में सुगठित और सुस्पष्ट होती है; अधिकतर में तो वह अवगुण्ठित, प्रायः अप्रभावी या मात्र एक आभास की भाँति होती है, वह इतनी प्रबल या पर्याप्त नहीं होती कि आध्यात्मिक जीवन को सँभाल सके। यही कारण है कि जो लोग इस 'सत्य' के प्रति आकर्षित होते हैं वे यहाँ आयें ताकि वे माँ का स्पर्श प्राप्त कर सकें जिससे उनके अन्दर की चैत्य सत्ता जाग्रत् होने के लिए तैयार हो सके—यह उनके लिए प्रभावी चैत्य सम्पर्क की शुरुआत होती है। यही कारण है कि बहुतों के लिए यह ज़रूरी होता है कि वे यहाँ रहें—अगर वे तैयार हों—ताकि प्रत्यक्ष प्रभाव और निकटता तले उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हो कि वे विकसित हो सकें, अपनी चेतना में चैत्य सत्ता को सुगठित कर उसे सम्मुख ले आयें। जब व्यक्ति को स्पर्श प्राप्त हो जाता है और वह विकास के पथ पर बढ़ चलता है, अगर वह समर्थ हो तो वह बाहरी जगत् में वापिस जाकर, दूर रहते हुए भी सुरक्षा तथा पथ-प्रदर्शन पाता हुआ, सम्पर्क बनाये रख सकता और अपने आध्यात्मिक पथ पर चलता चला जा सकता है। लेकिन यह भी सच है कि चैत्य-सम्पर्क तथा चैत्य-विकास के लिए बाहरी जगत् के प्रभाव

अनुकूल नहीं होते, अगर साधक पर्याप्त रूप से सावधान और एकाग्र नहीं हो तो कुछ समय बाद चैत्य सम्पर्क आसानी से लुप्त हो सकता या ढक जाता है, तब विकास में देर लग सकती है, वह रुक सकता है, यहाँ तक कि विरोधी प्रभावों और क्रियाओं के द्वारा कम भी हो सकता है। इसीलिए यहाँ रहने की आवश्यकता होती है और व्यक्ति प्रायशः यह अनुभव भी करता है कि अपनी प्रगति को मज़बूत करने, सम्पर्क को सतत बनाये रखने और आगे बढ़ने के लिए, अपने-आपको बीच-बीच में ज़रा-सा धक्का लगाने के लिए केन्द्रीय प्रभाव के स्थल पर रहना ज़रूरी होता है। बीच-बीच में ऐसी निकटता के लिए अभीप्सा का होना प्राणिक कामना नहीं है; वह प्राणिक कामना केवल तभी होती है जब किसी प्राणिक उद्देश्य से भरी या किसी अहंकारिक आग्रह पर डटी हो—तब नहीं जब वह चैत्य सत्ता की अभीप्सा हो—अचञ्चल, गभीर, जिसमें न कोई शोर-शराबा हो और न ही विचलित करने वाला आग्रह।

यह उनके लिए है जिनके अन्दर *अब तक* पुकार नहीं उठी है, जिनके अन्दर केन्द्रीय 'शक्ति' तथा 'उपस्थिति' के प्रत्यक्ष दबाव के कारण आश्रम में बसने की प्रेरणा नहीं जागी है। जो यहाँ प्रारम्भ से रहते हैं वह इस कारण कि उनके अन्दर पुकार उठी थी या जो यहाँ किसी-न-किसी कारण से हैं वे ऐसे हैं जो तैयार हैं और जिन्हें यह सुअवसर प्रदान किया गया है कि सृष्टि के उस नूतन कार्य में भाग लें जिसकी यहाँ इस योग के द्वारा तैयारी चल रही है। उनके लिए इस वातावरण में और श्रीमाँ के निकट रहना अनिवार्य होता है; उनके लिए यहाँ से चले जाना सुअवसर से हाथ धो बैठना होगा, आध्यात्मिक नियति से पीठ फेर लेना होगा। ऊपर से देखने पर यहाँ रहने वालों की कठिनाइयाँ बहुधा बाहर रहने वालों के संघर्षों से कहीं बड़ी दीखती हैं क्योंकि यहाँ माँग और दबाव बाहर की अपेक्षा कहीं ज़्यादा होता है। लेकिन साथ ही उन्हें प्रदत्त सुअवसर भी अधिक महान् होता है और उनके विकास के लिए उन पर उँडेली जाने वाली शक्ति और प्रभाव भी बहुतायत में होता है। और अगर वे चुनाव और पुकार के प्रति निष्ठावान् रहें तो वे न केवल आध्यात्मिक रूप से सफल हो सकते हैं, बल्कि निश्चित रूप से होंगे।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५७४-७६

एक विशेष वैयक्तिक सम्बन्ध

बहुत समय पहले श्रीअरविन्द ने आश्रम में हर जगह यह अनुस्मारक लगवा दिया था जिसे तुम सब जानते हो : "हमेशा ऐसे व्यवहार करो मानों माताजी तुम्हें देख रही हैं, क्योंकि, वास्तव में, वे हमेशा उपस्थित हैं।"

यह केवल एक वचन नहीं है, कुछ शब्द नहीं हैं, यह एक तथ्य है। मैं तुम्हारे साथ बहुत ठोस रूप में हूँ और जिनमें सूक्ष्म दृष्टि है वे मुझे देख सकते हैं।

सामान्य रीति से मेरी 'शक्ति' हर जगह कार्यरत है, वह हमेशा तुम्हारी सत्ता के मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को इधर-उधर हटाती और नये रूप में रखती तथा तुम्हारे सामने तुम्हारी प्रकृति के नये-नये रूपों को निरूपित करती रहती है ताकि तुम देख सको कि क्या-क्या बदलना, विकसित करना या त्यागना है।

इसके अलावा, मेरे और तुम्हारे बीच एक विशेष सम्बन्ध है, उन सबके साथ जो मेरी और श्रीअरविन्द की शिक्षा की ओर मुड़े हुए हैं,— और, यह भली-भाँति जानी हुई बात है कि इसमें दूरी से कोई अन्तर नहीं पड़ता, तुम फ़्रांस में हो सकते हो, दुनिया के दूसरे छोर पर हो सकते हो या पॉण्डिचेरी में, यह सम्बन्ध हमेशा सच्चा और जीवन्त रहता है। और हर बार जब पुकार आती है, हर बार जब इसकी ज़रूरत हो कि मुझे पता लगे ताकि मैं एक शक्ति, एक प्रेरणा या रक्षण या कोई और चीज़ भेजूँ, तो अचानक मेरे पास एक सन्देश-सा आता है और मैं जो ज़रूरी होता है वह कर देती हूँ।...

और मेरे और तुम्हारे बीच का यह सम्बन्ध कभी नहीं टूटता। ऐसे लोग हैं जिन्होंने विद्रोह की अवस्था में बहुत पहले आश्रम छोड़ दिया था, और फिर भी मैं उनके बारे में टोह लेती रहती हूँ, उनकी देखभाल करती हूँ। तुम्हें कभी ऐसे ही छोड़ नहीं दिया जाता।

सच तो यह है कि मैं अपने-आपको हर एक के लिए ज़िम्मेदार मानती हूँ, उनके लिए भी जिनसे मैं अपने जीवन में बस निमिषमात्र के लिए ही मिली हूँ।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ७६-७७

श्रीअरविन्द आश्रम के बारे में नलिनी दा[१] का कथन

जिस तरह पृथ्वी जगत् का प्रतिनिधित्व करती है उसी तरह भारत पृथ्वी का प्रतिनिधित्व करता है। पृथ्वी के क्रमविकास के लिए भारत को माध्यम और प्रयोगशाला के रूप में चुना गया है; मानवता की सभी समस्याएँ यहाँ भारत में इकट्ठी हैं। यहाँ जिस-जिस समस्या का समाधान हो जायेगा उस-उस समस्या का समाधान यान्त्रिक रूप से जगत् में भी होता जायेगा या उसके समाधान का रास्ता दिखला दिया जायेगा। सभी कठिनाइयाँ यहाँ इसलिए संकेन्द्रित हैं क्योंकि यहाँ एक जीवन्त चेतना है, केवल वही समस्याओं को सुलझा सकती है।

उसी तरह से यह भी कहा जा सकता है कि यहाँ हमारा आश्रम उन सभी कठिनाइयों का प्रतीकात्मक रूप है जो मानवजाति के पथ पर आड़े आती हैं; फिर वे चाहे मनोवैज्ञानिक हों, भौतिक, राष्ट्रीय या सामाजिक—कोई भी क्यों न हों। सभी तरह की असंगतियाँ और प्रतिकूलताएँ, बाधाएँ और अड़चनें, अज्ञान और पूर्वाग्रह—जो प्रगति तथा नूतन सृष्टि में अड़ंगा लगाते हैं, यात्रा में अधिकाधिक देर लगाने के लिए तैनात रहते हैं वे सभी यहाँ मौजूद हैं। इसका यही कारण है कि यह एक ऐसा स्थान है जहाँ सतही नकारात्मक गतियों के पीछे अभीप्सा और सहारा प्रदान करने वाली एक चेतना विद्यमान है जो अपनी शक्ति तथा प्रभावकारिता में चरम कोटि की हैं। यहाँ व्यक्तियों को सभी तरह की कठिनाइयों का सामना करना होता है ताकि वैयक्तिक और साथ ही सामूहिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिए उन कठिनाइयों को जीता जा सके।

*

श्रीमाँ ने यह भी कहा है कि भारत जगत् का प्रतिनिधि है—ठीक उसी तरह जैसे आश्रम भारत का प्रतिनिधि है और यहाँ का प्रत्येक निवासी आश्रम का प्रतिनिधित्व करता है—जगत् की सभी समस्याओं का हल भारत को करना होगा, क्योंकि भारत में वह क्षमता है और यह करना उसकी नियति

१. श्री नलिनीकान्त गुप्त, जो श्रीअरविन्द के *मानस पुत्र* के रूप में भी जाने जाते थे, उनके साथ स्वतन्त्रता-संग्राम से लेकर आश्रम-जीवन तक रहे। वे आश्रम की नींव के एक प्रमुख स्तम्भ रहे हैं।

में है। जब भारत अपनी समस्याओं को सुलझा लेगा तब जगत् भी देखेगा कि उसकी समस्याएँ वास्तव में हल हो रही हैं। आश्रम से यह आशा की जाती है कि वह भारत को रास्ता सुझाये। क्या आश्रम अपनी इस भूमिका को निबाह पायेगा? कम-से-कम श्रीमाँ यही चाहती थीं। सब कुछ यहाँ के व्यक्तियों पर निर्भर करता है। निश्चित रूप से हमें हमेशा यह याद रखना चाहिये कि श्रीमाँ की सहायता सतत रूप से हमारे साथ रहती है।

—श्री नलिनीकान्त गुप्त

अभीप्सा करने वाली सभी आत्माएँ हमेशा मेरी सीधी देख-रेख में हैं।

—श्रीमाँ

Space on this page is offered by:

DEORAH SEVA NIDHI

Charitable Trust Dedicated to Service
(Founder trustee: Late Shri S. L. Deorah)
25, Ballygunge Park, Kolkata - 700 019

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

अधिष्ठाता : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st November 2017
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

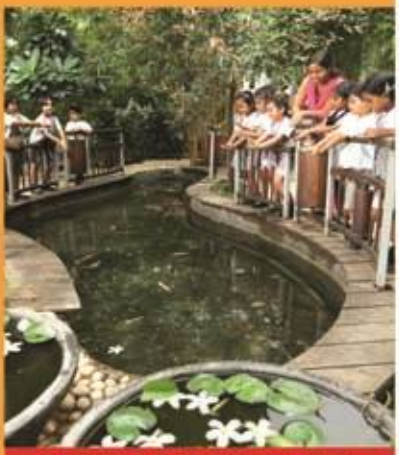

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2017-18

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363